शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 16 अंक : 7 1 फरवरी 2024

माघ, विक्रम संवत् 2080

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा
जी. लक्ष्मण
महेन्द्र कुमार

❖

सम्पादक

प्रो. शिवशरण कौशिक

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
प्रो. राजेश जांगीड़
प्रो. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. एस.पी. सिंह
प्रो. दीनदयाल गुप्ता
भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बसंत जिंदल

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

पाठशालाओं में जीवन निर्माण की शिक्षा का संस्कार

❑ प्रो. गीताराम शर्मा

शिक्षा द्वारा शारीरिक मानसिक बौद्धिक और आत्मिक रूप से समर्थ नागरिक स्वयं, समाज और राष्ट्र की सभी समस्याओं का विवेकपूर्ण समाधान करने में सक्षम हो सकते हो। शिक्षा की कसोटी ऐसे व्यक्तित्वों की निर्माण क्षमता है जो उत्साह, अनालस्य, क्रियाविधिज्ञ, व्यसनमुक्त, शौर्य सम्पन्न, कृतज्ञ, धैर्यशील हों, जो

रचनात्मक शुभ संकल्पों, प्रेरणाओं, आदर्शों और आचरण के लिए अपने अद्भुत अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की भव्य आकांक्षाओं के ध्येय से वर्तमान में प्रतिक्षण कर्तव्य पथ पर चलने के लिए कृत संकल्प हों।

अनुक्रम

3.	संपादकीय	- प्रो. शिवशरण कौशिक
8.	पाठशालाओं का संस्कारमूलक स्वरूप	- विश्वास कुमार तिवारी
10.	नैतिक चरित्र एवं सांस्कृतिक-व्यक्तित्व के निर्माण...	- डॉ. सुदेव माटिया
13.	महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा का संस्कार	- श्रीमती शीला शुक्ला
15.	कक्षाओं में देशभक्ति का शिक्षण और मूल्य बोध ...	- मैनाक पुताटुंडा
17.	भारतीय सनातन शिक्षा में मानवीय मूल्यों का संस्कार	- डॉ. प्रशांत सरकार
19.	शिक्षा, संस्कृति और मानवीय मूल्य	- श्रीमती ऊषा पांडेय
22.	शिक्षा : संस्कारों की पोषक	- डॉ. जसपाल सिंह वरवाल
24.	मानवीय मूल्यों का संस्कार	- डॉ. धनंजय कुमार मिश्र
28.	Character Building : A Journey through...	- Amit Halder
31.	The significance and role of Sanskriti...	- Prof. TS Girishkumar
33.	National Education Policy (2020) ...	- Dr. Anil Kumar Biswas
36.	Swami Vivekananda and His ...	- Amit Kundu
38.	"Building Futures : The Essential Role ...	- Dr. Mayur Pujari

Scientific Temperament and Thinking in An Indian Way

❑ **Dr. Debadin Bose**

Every discovery is a creation. It may not come in the form of a beautiful sculpture, painting, poetry or literary work, but comes in either a mathematical formula or a graph or some colour changes in a test tube. The 9th symphony of Beethoven or Gitanjali of Tagore or theory of relativity of Einstein resonate in a way. A scientist ultimately touches the same destination which a writer, a singer, a painter or a poet can touch with their own creation.

संपादकीय

प्रो. शिवशरण कौशिक
संपादक

'सा विद्या या विमुक्तये' श्रीविष्णु पुराण के इस श्लोक में विद्या की सोद्देश्य परिभाषा की गई है। अर्थात् वही विद्या है जो मुक्ति के लिए है। उल्लेखनीय है कि भारत में शिक्षा को प्राचीन व्यवस्था में विद्या ही कहा जाता रहा है और विद्या की यह मुक्ति की परिभाषा अपने आप में पूर्णत: अर्थवान् है। प्राचीन काल से ही चित्त के विकारों तथा कषायों से मुक्ति का दर्शन भारतीय विद्या-परम्परा का अभिन्न अंग रही है। यद्यपि इस श्लोक के पढ़ने से कई प्रश्न उठते हैं कि विद्या से किसकी मुक्ति, किससे मुक्ति, किसलिए मुक्ति? इसके उपरान्त यह प्रश्न भी उठता है कि विद्या से मुक्ति की प्रक्रिया क्या हो, उसका विधान क्या हो तथा वह किस प्रकार मुक्ति का साधन बने? इन सभी प्रश्नों के सम्यक उत्तर पाना भी विद्या ही है। अविद्या के जितने भी कारण और आधार हैं, उनका परितोष तथा निदान विद्या द्वारा ही किया जाना उचित बताया गया है। और मनुष्य जीवन-पर्यन्त अविद्या से मुक्ति की कामना और प्रयत्न करता ही रहता है।

वस्तुत: मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए अपने जन्मदाता (माता-पिता), अपनी ज्ञान-परम्परा, अपनी दैवीय आस्था, अपने अन्य सहयोगियों के साथ प्रकृति व पर्यावरण का भी सहचर बनता है। मनुष्य अपने व्यक्तित्व विकास में इन सबसे जो उपकार व सहयोग प्राप्त करता है, वह आजन्म कर्तव्य के रूप में इन सभी का ऋण-शोधन करता है। इसी क्रम में वह अपने परिवार के पालन के साथ अपने पूर्वजों का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करता है, अपनी मान्यतानुसार दैवीय आस्था के सजीव प्रतीकों का स्मरण करता है, अपनी ज्ञान-परम्परा का विस्तार और विकास करता है, जरूरतमन्द मनुष्यों की सहायता करता है, प्रकृति और मानवेतर प्राणियों का हित-साधन करता है। साथ ही स्वयं, परिवार व समाज के निर्माण के साथ राष्ट्र निर्माण में भी अपनी भागीदारी करता है। सामाजिक दृष्टि से मनुष्य की यही अविद्या-मुक्ति है जो उसे अपने कर्तव्य-बोध की चरम स्थिति से प्राप्त होती है।

यह सत्य है कि किसी भी राष्ट्र के शिक्षा-संस्थानों में ही राष्ट्र बनता है, अत: यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि भारतीय मनीषा ने, प्रत्येक अतीत युग में, शिक्षा के क्षेत्र को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा तथा तत्कालीन शासन-व्यवस्था के नियंत्रण से उसे मुक्त रखा।

'भारतीय संस्कृति के स्वर' नामक पुस्तक में आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली प्रख्यात लेखिका महादेवी वर्मा ने 'शिक्षा का उद्देश्य' निबंध में अपने राष्ट्र की जड़ों के साथ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व निर्माण के महत्त्व को रेखांकित किया है। वे कहती हैं – ''अपनी धरती की गहराई में जड़ें रखने वाले पौधे किसी भी दिशा से आने वाले पवन के उष्ण या शीतल झोंकों से खेल लेते हैं। वर्षा की झड़ी और कठिन धूप को भेंट लेते हैं। यदि वे अपनी धरती का आधार छोड़ दें तो न मलय समीर उन्हें जीवित रख सकेगा और न वर्षा का अमृत जल। धनुष पर बाण का सन्धान कर जब तक उसे पीछे कान तक नहीं खींचा जाता, तब तक उससे लक्ष्यवेध सम्भव नहीं होता। पीछे का पग धरती पर जमाए बिना न आगे का उठाया जा सकता है और न एक डग आगे बढ़ा सकता है।'' यह राष्ट्र के स्वरूप और उसके नागरिकों के जीवन-चरित्र को रेखांकित करने वाला कथन है। शिक्षा किसी भी राष्ट्र का मेरुदण्ड कही जा सकती है। वह विगत की उपलब्धियों तथा वर्तमान परिस्थितियों का सन्धि-स्थल ही नहीं, अपितु ऐसा आलोक भी है, जिसमें भविष्य की रूपरेखा निखरती और श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर होती चलती है।

शिक्षा-जगत से ही श्रेष्ठ नागरिक निर्मित होते हैं और वही समाज, शासन, विज्ञान, कला, साहित्य, अनुसन्धान आदि क्षेत्रों में नवीन प्रतिभाएँ भेजता है। यदि शिक्षा-क्षेत्र द्वारा समाज-जीवन में पहुँचाया गया नवीन रक्त स्वस्थ और विवेकवान होगा तो राष्ट्र के विभिन्न अंग-प्रत्यंग स्वस्थ और क्रियाशील होंगे। भारतवर्षोन्नति के लिए आज शिक्षा को राष्ट्रधारित होना चाहिए। भारत अनेक महापुरुषों का रत्नाकर रहा है, उनका जीवन-चरित और संघर्ष विद्यार्थियों की पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित होना तथा उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को पाठशालाओं में जीवन्तता के साथ प्रस्तुत करने से पाठशालाएँ संस्कारशाली बन सकेंगी।

इसलिए कहा जा सकता है कि शिक्षा ही वह साधन है जो विद्यार्थी को, मनुष्य को सम्यक मनोवृत्ति, सम्यक आचरण तथा सम्यक क्रिया-कलाओं द्वारा अविद्या के बंधन से मुक्त करती है। साथ ही विद्यार्थी को शरीर से, बुद्धि से तथा आस्था से सबल बनाती है। यह बलप्रद, आलोकप्रद तथा ज्ञानप्रद शिक्षा ही विद्या है जो मुक्तिदाता है। ❑

पाठशालाओं में जीवन निर्माण की शिक्षा का संस्कार

प्रो. गीताराम शर्मा
आचार्य
राजकीय महाविद्यालय,
धौलपुर (राज.)

भारतीय जीवनदर्शन के अनुसार जीवन की व्याख्या बहुत व्यापक है। उपनिषदों के अनुसार सम्पूर्ण जगत और उसमें प्रवाहित जीवन परम सत्ता का रूपान्तरण है। परम सत्ता ने स्वयं के - ''एकोऽहं बहु स्याम'' के संकल्प से स्वयं की ही शक्ति से पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और इन सब के समन्वय से मनुष्य और मनुष्येतर पशु, पक्षी, जीव, जन्तु, वृक्ष, नदी, पर्वत, सागर, सभी सजीवों के भोग्यादि पदार्थ, रहने के पृथ्वी आदि लोक निर्मित किये। कुल मिलाकर समग्र सृष्टि परमात्म-अंश और एकात्म है। इसलिए जीवन एकल और स्वतंत्र होते हुए भी परस्पर पूरक है।

ईशावास्यं इदं सर्वं यत्किंञ्च
जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
मा गृध कस्यस्विद्धनम्।।

भारतीय जीवनदर्शन कहता है कि प्रकृति के संसाधनों के हम स्वामी नहीं हैं, वे हमें उपहार स्वरूप प्राप्त हैं, इसलिए वर्तमान की जरूरत भर के लिए उनका उपभोग तो करना ही पड़ेगा लेकिन भविष्य की पीढ़ियों के लिए उनकी सुरक्षा का कर्तव्य भी हमारा है। इसलिए भारतीय ऋषियों ने श्रेष्ठ जीवन का एक सरल सूत्र दिया है जो वृहदारण्यक उपनिषद के बहुत चर्चित श्लोक में व्यक्त है। यही भारतीय दृष्टि में जीवन का समाजशास्त्र है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।

आधुनिकता के व्यामोह में मानवीय जीवन में ऐसी विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं हैं जिनसे जीवन का सहज प्रवाह अवरुद्ध सा दिखाई देता है। सुरदुर्लभ मानवीय जीवन अनेक जटिलताओं में जकड़ा हुआ सा प्रतीत हो रहा है। गोस्वामी तुलसी दास रामचरित मानस में लिखते हैं कि -

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद्गन्थन गावा।।

कैसी विडम्बना है जिस मानवीय जीवन की निर्मिति स्वयं के समाज के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्राणी समुदाय के योगक्षेम के लिए हुई है, वह स्वयं अपना ही बोझ कैसे बनता जा रहा है। सुख-दुख, आशा-निराशा, लाभ-हानि, जय-पराजय के द्वन्द्व का गहरा अँधेरा मानवीय चेतना को जब सघनता से घेर लेता है तो व्यक्तित्व में कुण्ठा, अवसाद, भय, अविवेक, सन्त्रास, किंकर्तव्यविमूढ़ता, आत्महीनता जैसे व्यक्तित्वरोधी दुर्गुणों का उदय स्वाभाविक है। कवि जयशंकर प्रसाद कृत कामायनी के प्रारम्भ में प्रलय में सब

कुछ गंवा चुके सर्वहारा मनु को जाग्रत करते हुए श्रद्धा कहती है –

दब रहे अपने ही बोझ,
खोजते कहीं न अवलम्ब।

इस प्रसंग को यदि सांस्कृतिक मूल्य निष्ठ शिक्षा द्वारा जीवन निर्माण की प्रक्रिया से जोड़ दिया जाय तो यह अर्थ बहुत स्पष्टता से ध्वनित होता है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, जैसे दुर्गुणों के बोझ तले दबे मनुष्य को स्वयं बोझ से मुक्त कर सभ्य और भव्य बनाने की क्षमता केवल जीवन-मूल्य रूपी संस्कारों से पोषित शिक्षा व्यवस्था में ही है। शिक्षा का परम प्रयोजन ही जीवन की पूर्णता की अनुभूति कराना है और यह पूर्णता साधनों पर नहीं अपितु व्यक्ति के स्वयं के सत्व जागरण से ही सिद्ध हो सकती है। शास्त्र भी बाह्य उपकरणों की अपेक्षा मनोबल को ही सिद्धि का साधन बता रहे हैं – ''क्रिया सिद्धि सत्वे महतां नोपकरणैः।'' जब जब यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य को अपने ही बोझ से मुक्त करने का सर्वोत्तम उपाय क्या है ? तब तब हमारा ध्यान कामायनी में मनु के प्रति प्रकट श्रद्धोद्गार पर ही जाता है। वह कहती है –

दया माया ममता लो
अगाध विश्वास।
हमारा हृदयरत्ननिधि स्वच्छ
खुला है तुम्हारे पास।।

इस रूपक से ऐसा लगता है कि मनुष्य को ऊर्ध्वरेता बनाने का आह्वान करने वाली यह श्रद्धा भारतीय संस्कृति में काम्य शिक्षा ही है। संस्कृति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उदात्त संस्कार निष्ठ जीवनमूल्यों और उनसे प्रेरित मानवोचित व्यवहारों से है। यह सांस्कृतिक मूल्य प्रेरित शिक्षा ही है जो युग युगों से जीवन प्रवाह को उदारता पूर्वक उदात्त बनाने के लिए चारित्रिक चेतना के रूप में देश-काल की समग्र अपेक्षाओं को पूरा करते हुए भेदकारी और विध्वंशक तटबन्धों से बिना बंधे सर्वहितकारी और सर्वमलहारी सुरसरि के समान प्रवाहित रही है। भारतीय संस्कृति में संस्कार इतने अधिक स्पृहणीय हैं कि ऋषियों ने आह्वान किया कि शुभ संकल्प और संस्कार प्रेरित विचार चाहे जहाँ से आयें, सम्मान्य हैं –

आनोभद्रा कृतवो यन्तु विश्वतोदब्धासो
अपरीतासः उद्भिदः – यजुर्वेद

वस्तुतः संस्कार ही संस्कृति का गहना है जिनको गढ़ने का दायित्व शिक्षा का है। संस्कृति की अनेक परिभाषाओं का सार यही है कि संस्कृति शारीरिक और मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण और विकास अथवा उनसे प्रकट होने वाली आचार अवस्था है जिससे मन और रुचियों का परिष्कार होता है। सांस्कृतिक चैतन्य और उनसे उत्पन्न होने वाले श्रेयस्कर जीवन व्यवहार जीवन मूल्य कहे जाते हैं। कवि रामधारी सिंह दिनकर अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में कहते हैं कि – ''संस्कृति एक ऐसा गुण जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। जो हमारा आत्मिक गुण है, जो मनुष्य के स्वभाव में उसी तरह व्याप्त है जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन।'' भारत की शिक्षा व्यवस्था विश्वभर में इसलिए वरेण्य मानी जाती थी कि यहाँ पाठशालाएँ वस्तुतः संस्कार शालाएँ थीं। संस्कारों का सरोकार शारीरिक मानसिक बौद्धिक क्षमताओं का शोधन कर सर्वहितभूतकामना और व्यवहार से सम्पन्न विशुद्ध सामाजिक मनुष्य बनाने से है। भारतीय संस्कृति में उपनयनादि संस्कार जैसे विशिष्ट कर्मों से जो आत्मपरिष्कार किया जाता है उसी परिष्कार का व्यापक स्तर पर सतत सम्पादन पाठशाला अथवा शिक्षालयों का है। भारत में शिक्षाशाला विश्वभर में संस्कारशाला के लिए सदियों से समादृत ही नहीं रहीं अपितु विभिन्न विपरीत परिस्थितियों में इन्हीं संस्कारों की शक्ति के बल पर भारतीय संस्कृति और समाज अक्षुण्ण भी रह सके।

''यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'' सच में, यह बात क्या है ? जो हमारी हस्ती को शाश्वत रखे हुए है। वह

हस्ती हमारे संस्कारनिष्ठ जीवनमूल्य। ये जीवन मूल्य ही अपनी अन्तः प्रेरणात्मक स्वतः स्फूर्त शक्ति से भारतीयता को शाश्वत बनाए हुए हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि – ''दुर्वार काल स्त्रोत सबको बहा देगा। सुनहरे अक्षरो में छपी पंक्तियाँ भी काल के थपेड़ों को बर्दाश्त करने की शक्ति नहीं रखतीं, वही बचेगा जिसे मनुष्य के हृदय में स्थान प्राप्त होगा।'' वास्तव में भारतीय जीवन दर्शन के अनुसार उदात्त जीवन की पहचान त्याग, तप, प्रेम, परोपकार, दया, शम, दम, करुणा, अहिंसा, अस्तेय, शौच, सत्य स्नेह, साहचर्य, समरसता, सौहार्द, सह अस्तित्व, सर्वभूतहितकामनादि वे संस्कारयुक्त जीवन मूल्य हैं जिन्हें मनुष्यता के हृदय में सदा ही स्थान प्राप्त है। शिक्षालयों का मुख्य ध्येय इन्हीं आत्मिक गुणों का प्रकट करने की सामर्थ्य पैदा करना है। यही वह आत्मिक पूर्णता जिसको प्रकट कराना शिक्षा का परम ध्येय है। सभी भारतीय दर्शन और उनसे प्रेरित विश्वभर में वरेण्य भारतीय जीवन दृष्टि विकास के लिए प्रेरक स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविन्द घोष, महात्मा गाँधी, श्री माधव सदाशिव गोलवलकर आदि के शैक्षिक दर्शन का सार यही है कि शिक्षा मानव की आत्मा में बसी है, शिक्षक और शिक्षालयों का कार्य उसे प्रकट होने के लिए प्रेरक वातावरण निर्मित करना है। कोई भी व्यक्ति किसी को सिखाता नहीं है अपितु आत्मा को अज्ञानता के आवरण से मुक्त करता है। आवरण हटाना ही तो संस्कार है। तर्क संग्रह में संस्कार का लक्षण ही यह किया गया है कि – स्थिति स्थापकः संस्कारः। अर्थात् संस्कार आत्मा का गुण है जिसका मूल स्वरुप है आत्मा के मूल स्वभाव का प्रकटीकरण। सदियों से जाँचे परखे गये भारतीय शैक्षिक मूल्य बताते हैं कि जीवन स्वभावतः आनन्द स्वरूप है। शिक्षा जीवन के मूल स्वभाव से साक्षात्कार कराती है। शिक्षा मुक्ति के लिए है, आनन्द के लिए है। आनन्द का मार्ग प्रेम, ममता, समता, करुणा, निर्लोभ सत्य, स्नेह से होकर गुजरता है लेकिन मैकालेवादी शिक्षा व्यवस्था संघर्ष सिखाती है, प्रतिस्पर्धा सिखाती है। नौकरी पाने का संघर्ष, धन कमाने की प्रतिस्पर्धा वर्तमान के शैक्षिक ध्येय हैं। हर अभिभावक बच्चे को यही सिखाते रहा है कि कम्पटीशन ही तेरी नियति है, उसमें पिछड़ा तो कोई नहीं पूछने वाला, बताओ जीवन की ऐसी विभीषिका से भविष्य के प्रति आशंकित विद्यार्थी अपने साथी विद्यार्थियों से प्रेम करेगा कैसे ? प्रेम का सूत्र ही ''मैं नहीं तुम है'' जबकि कम्पटीशन ''तू नहीं मैं'' भाव से होता है। एक नौकरी के लिए सैकड़ों लाइन में हैं तो वे प्रेम कर सकते हैं क्या? प्रतिस्पर्धा तो ईर्ष्या सिखाती है, लोभ सिखाती है, ऐसी प्रतिस्पर्धा से प्राप्त नौकरी या तथाकथित सफलता अहंकार देती है, तथा इन के सहारे निर्मित भविष्य अंधकारमय हो जाता है। इस प्रकार अतीत–वर्तमान–तथा भविष्य के बीच इन बिखरे टूटे तारों को जोड़ना इस समय शिक्षा की सर्वोच्च जिम्मेदारी है। शिक्षालयों का शैक्षिक पर्यावरण ऐसा

शिक्षा द्वारा शारीरिक मानसिक बौद्धिक और आत्मिक रूप से समर्थ नागरिक स्वयं, समाज और राष्ट्र की सभी समस्याओं का विवेकपूर्ण समाधान करने में सक्षम हो सकते हो। शिक्षा की कसोटी ऐसे व्यक्तित्वों की निर्माण क्षमता है जो उत्साह, अनालस्य, क्रियाविधिज्ञ, व्यसनमुक्त, शौर्य सम्पन्न, कृतज्ञ, धैर्यशील हों, जो रचनात्मक शुभ संकल्पों, प्रेरणाओं, आदर्शों और आचरण के लिए अपने अद्भुत अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की भव्य आकांक्षाओं के ध्येय से वर्तमान में प्रतिक्षण कर्तव्य पथ पर चलने के लिए कृत संकल्प हों।

निर्मित हो जिसमें यह सन्देश हो कि प्रतिस्पर्धा वर्तमान की सच्चाई है, लेकिन यह प्रतिस्पर्धा दूसरों के बजाय स्वयं से हो तो जीवनपोषी हो सकती है। भारतीय संस्कृति और समाज में शिक्षा विषयक अभिमत बहुत स्पष्ट है कि पाठशालाओं का प्रमुख पाठ विद्यार्थियों को अनुदात्त के विरुद्ध उदात्त के संघर्ष के लिए प्रशिक्षित करना होना चाहिए। अतीत में इन्हीं जीवनमूल्यों के बल पर अनेक विसंगतियों के बीच भी भारत दुर्धर्ष संघर्षों में भी स्वयं का विश्वगुरुत्व सिद्ध करता रहा है। शिक्षा का व्यापक उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को ब्रह्माण्डीय बनाकर उन्हें जीवन के लिए सशक्त और उपयोगी बनाना। समाज के प्रति संवेदना, श्रम के प्रति समादर, विविधताओं के पुष्पों से गुंथी भारतीय संस्कृति और समाज के जीवन आदर्शों के बोध और व्यवहार की समझ, सह अस्तित्व और साहचर्य मय जीवन के प्रति प्रेरणा आदि लोकतान्त्रिक मूल्यों को सशक्त करने के लिए शिक्षालय ही सर्वोच्च स्थान है। स्वामी विवेकानन्द जिस पञ्च कोशीय व्यक्तित्व के निर्माण को शिक्षा का विशुद्ध उद्देश्य बताते हैं, वह जीवनमूल्यपोषी पाठशालाओं में ही संभव है। ऐसे शिक्षालयों की महती अपेक्षा है जिनमें संवेदनहीन मानव पुतलों की लम्बी कतारों की जगह गांधी, स्वामी विवेकानन्द, सुभाष, शिवाजी, चाणक्य, वीर सावरकर जैसे राष्ट्रीय चैतन्य से दीप्त व्यक्तित्व गढ़े जा सकें। भारतीय संस्कृति की दृढ़ आस्था है कि मानवीय जीवन की सार्थकता जीवन के साथ जीवन मूल्यों की व्याप्ति में ही अन्तर्निहित है। भारतीय शिक्षा परम्परा में सदियों से जीवन मूल्य ही पुरुषार्थ चतुष्टय के रूप में स्थापित हैं। पुरुषार्थ रूप संस्कारों की अन्विति के बिना जीवन निरर्थक ही माना गया है–

धर्मार्थ काम मोक्षेषु,
यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तस्येव तस्य
जन्मः निरर्थकम्।।

यदि शिक्षा जीवनीय तत्त्वों को उभारने में सक्षम हो सकी तो सभी भौतिक अपेक्षाओं की पूर्ति तो स्वयमेव कर सकेगी। जैसा कि नीतिशास्त्र में कहा गया है –

उत्साह सम्पन्नमदीर्घसूत्रं,
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदं च,
लक्ष्मी स्वयं याति निवास हेतोः।।

अर्थात् उत्साह सम्पन्न, अदीर्घसूत्री, कार्यविधि के ज्ञाता, व्यसनमुक्त, पराक्रमी, कृतज्ञ और दृढ़सौहार्द सम्पन्न व्यक्ति को समृद्धि के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता अपितु लक्ष्मी स्वयं ऐसे व्यक्तित्व सम्पन्न का वरण करती है। इस पूरे कथ्य का सारांश यही है कि शिक्षा की सार्थकता तभी है जब वह सर्वविध क्षमताओं से संपन्न, श्रम, सेवा, शील, सदाचार, संयम, समर्पण, समता, ममता, बन्धुता, समरसता, एकता, आत्मानुशासन, आत्मगौरव, राष्ट्र भक्ति, स्वतन्त्र चेतना तथा सर्वोदय की भावना जैसे जीवनमूल्य रूपी संस्कारों से संपन्न व्यक्तित्व का निर्माण करे। शिक्षा द्वारा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक रूप से समर्थ नागरिक स्वयं, समाज और राष्ट्र की सभी समस्याओं का विवेकपूर्ण समाधान करने में सक्षम हो सकते हैं। शिक्षा की कसौटी ऐसे व्यक्तित्वों की निर्माण क्षमता है जो उत्साह, अनालस्य, क्रियाविधिज्ञ, व्यसनमुक्त, शौर्य सम्पन्न, कृतज्ञ, धैर्यशील हों, जो रचनात्मक शुभ संकल्पों, प्रेरणाओं, आदर्शों और आचरण के लिए अपने अद्भुत अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की भव्य आकांक्षाओं के ध्येय से वर्तमान में प्रतिक्षण कर्तव्य पथ पर चलने के लिए कृत संकल्प हों। सौभाग्य से राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 में समग्र शिक्षा के ऐसे समग्र स्वप्न को सिद्ध करने के अनेक प्रावधान विहित हैं जो शिक्षा की भारतीय संकल्पना को साकार कर सकते हैं। ❑

शिक्षक एवं शिक्षा जगत से जुड़े लोगों में शिष्टाचार, परोपकार, सादाजीवन-उच्च विचार वाले लोगों की आवश्यकता है जिसके लिए शिक्षा जगत से जुड़े लोगों को कार्यशाला लगाकर निर्धारित पाठ्यक्रम से उनके नागरिक गुणों के उन्मुखी कारण के साथ-साथ उनके नैतिक आचरण का भी समय-समय फर अवलोकन कर प्रशस्ति पत्र द्वारा प्रोत्साहित करना अच्छा कदम होगा।

पाठशालाओं का संस्कारमूलक स्वरूप

विश्वास कुमार तिवारी
जिला कोषाध्यक्ष,
छत्तीसगढ़ शिक्षक संघ
सरगुजा इकाई,
अंबिकापुर सरगुजा

पाठशालाओं में संस्कार युक्त विद्यार्थी तैयार करने के लिए शिक्षा जगत से जुड़े लोगों का संस्कारित होना आवश्यक है। हमारा विद्यालय परिवार जब तक संस्कारी प्रकृति का नहीं होगा तब तक विद्यालयों को संस्कार मूलक बनाने की दिशा में सोच नादानी ही माना जाएगा। हमारे देश के संविधान में बच्चे के सर्वांगीण विकास का प्रावधान है। जिसके अंदर शारीरिक विकास अर्थात् यह कल्पना है कि बच्चा शरीर से हृष्ट पुष्ट हो, मन से मजबूत और बुद्धि से मेधावी, प्रखर हो। ऐसी व्यवस्था की गयी हैं किंतु ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे आज भी कुपोषित हैं, कमजोर हैं। मानसिक रूप से अविकसित और बौद्धिक रूप से पिछड़े हुए हैं।

मानसिक विकास में बुद्धिशाली, मस्तिष्क का विकास शामिल है, मन में संतोष की भावना का विकास, धैर्य अर्थात् धीरज धरने का भाव विकसित करने के लिए कहानी, कविता आदि महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेंगे।

बौद्धिक विकास से आशय यह है कि बुद्धि विवेक का उपयोग कर अपना हित अहित सोचने समझने की भावना का विकास करना है।

आध्यात्मिक विकास जिसमें नैतिक मूल्य बड़ों का आदर करना, सम्मान करना, छोटे के प्रति स्नेह भाव रखना इसके साथ साथ रोज का दिनचर्या समय बद्ध होनी चाहिए। मानवीय मूल्य, स्नेह, प्रेम, दया, करुणा, श्रद्धा, सहयोग, सदाचार, मृदुभाषी, सरल सहज हो साथ ही सादा जीवन उच्च विचार की भावना की आवश्यकता है।

व्यक्तित्व विकास के अंतर्गत - कर्मठता, निस्वार्थ भाव, समानता की भावना, सभी को समान अवसर देना।

चरित्र निर्माण - व्यक्ति का चरित्रवान होना आवश्यक है वर्तमान समय में लोगों का दोहरा चरित्र है। लोग बोलते कुछ है, जैसा बोलते हैं उसके अनुरूप कार्य नहीं होता है।

विद्यालय को संस्कारवान बनाने के लिए आवश्यक कदम - विद्यालय को संस्कारसृजक स्वरूप प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम स्कूलों के भाषाई पाठ्यक्रम में नैतिक मूल्यों, मानवीय संवेदनाओं, चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास में सहायक सभी आवश्यक तत्त्वों को शामिल करना आवश्यक है।

स्कूल स्तर के भाषाई पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने वाली कहानियाँ, कविताएँ शिक्षाप्रद हों, रोचक हों, जिज्ञासा बढ़ाने वाली हों, सरल भाषा में हों। क्योंकि बच्चों को बोलने, सुनने, पढ़ने, लिखने की क्षमता विकसित कर स्वाध्याय की आदत डालने की आवश्यकता है। बच्चे कहानी को बड़े चाव से पूरे लगन के साथ पढ़ते समझते हैं।

शिक्षा जगत से जुड़े सभी लोगों के साथ-साथ शिक्षकों को प्रभावशाली

व्यक्तित्व एवं सच्चरित्र होना आवश्यक है। जिसके लिए शिक्षा जगत से जुड़े सभी लोगों को इस पर काम करने और निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप उन्मुखीकरण की महती आवश्यकता है।

वर्तमान समय में शिक्षा जगत से जुड़े लोगों में स्वार्थ की भावना पूर्ण रूप से घर कर गयी है। परमार्थ भावना का लोप होता जा रहा है। लोगों में सेवा, सहकार, सहयोग, परोपकार की भावना में कमी आती जा रही है।

शिक्षक एवं शिक्षा जगत से जुड़े लोगों में शिष्टाचार, परोपकार, सादाजीवन-उच्च विचार वाले लोगों की आवश्यकता है जिसके लिए शिक्षा जगत से जुड़े लोगों को कार्यशाला लगाकर निर्धारित पाठ्यक्रम से उनके नागरिक गुणों के उन्मुखी करण के साथ-साथ उनके नैतिक आचरण का भी समय-समय पर अवलोकन कर प्रशस्ति पत्र द्वारा प्रोत्साहित करना अच्छा कदम होगा।

जीवन निर्माण की शिक्षा के साथ संस्कारसृजक शिक्षा का आशय ही यही है कि पाठ्यक्रम में जीवनोपयोगी विषयों को शामिल किया जाय जिसके अध्ययन के उपरांत एक छात्र अपने समाज, देश और मानवमात्र के प्रति अपने अनिवार्य नैतिक दायित्वों का निर्वहन कर सके।

सहयोग एवं सहकार की भावना का समाज में विशेष महत्त्व है। मनुष्यजीवन आपसी सहयोग पर ही आधारित है। एक अकेला व्यक्ति पशुवत माना जाता है। मनुष्य समाज में ही रहता है। उसे जो भी मिला वह समाज से ही मिला है। यह ऋण उसे उतनी ही जिम्मेदारी से चुकाना है।

वर्तमान समय मे हमारे यहाँ गाँव-गाँव में प्रधान मंत्री आवास योजना के अंतर्गत मकान बन रहे हैं उनमें परिजनों के द्वारा ही निर्माण कार्य किया जा रहा है मैंने जानना चाहा तो उन लोगों ने बताया कि जब हमारे घर में काम लगेगा तो ये लोग भी घर बनाने में श्रम से कार्य करेंगे। यह सहयोग भावना का अच्छा उदाहरण है। वहीं दूसरी ओर हम शहरी जीवन को देखते हैं तो लोगों में स्वार्थपरता अपेक्षाकृत अधिक होती है। या तो किसी का किसी से मतलब ही नहीं होता। या फिर पड़ोसी-पड़ोसी में कलह होता है। बोल-चाल नहीं होता है। कई जगह केवल दबाने या हड़पने की नीति दिखती है।

इसे भली-भांति समझना होगा कि जितना मानव का अधिकार इस धरा पर है उतना ही अधिकार इस धरा पर प्राणिमात्र का भी है। जीवजगत जिसमें पेड़-पौधे, नदी-नाले, जीव जंतु, धरती-आकाश, नर-नारी, सभी का धरती पर समान अधिकार है। प्राणीजगत का अस्तित्व ही मानव जीवन की आधार शिला है। ईको फ्रैण्डली सिस्टम के अभाव में मानव जीवन की कल्पना एक धोखा है।

ईश्वर में आस्था का संस्कार - ईश्वर में आस्था व विश्वास का संस्कार हमें बच्चे में आरम्भ से डालने की आवश्यकता है। जब हम किसी मुसीबत में रहते हैं। उससे निजात पाने का कोई रास्ता नजर नहीं आता तो हम ईश्वर की आराधना के जरिए साहस और सामर्थ्य हासिल कर पाते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा विश्वास हमें बनाए रखना होगा। यह एक ताकत है।

सत्यनिष्ठा के संस्कार - सत्य का आचरण करना सत्य के साथ खड़े रहना भी आपका सामाजिक दायित्व है। और यही सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करता है।

सेवा के संस्कार - प्राणिमात्र में सेवा का संस्कार भी अपने दैनिक जीवन में शामिल किये जाने की आवश्यकता है। यही वह गुण है जो लोगों के आपसी दु:ख बाँटने, और परस्पर निर्भरता को स्वीकारने की दिशा में अपनी ओर से अच्छी पहल है।

महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा लेकर जीवन दिशा तय करना। हमारे महापुरुषों के जीवनदर्शन के अध्ययन से भी हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है। यह हमें स्वयं का मूल्यांकन करने और इनसे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाने में मदद करेगा।

मानवीय मूल्यों का संस्कार - मानवीय मूल्य के अंतर्गत परोपकार, सहयोग, सहकार, प्रेम, दया, करुणा, स्नेह, सम्मान, समानता का अवसर, सम भावना आदि मानवीय गुणों को भी अपने दैनिक जीवन के क्रिया कलापों में शामिल करने की आवश्यकता है।

अच्छी आदतों को जीवन शैली में शामिल करना - अच्छी आदतों को अपने दैनिक जीवन में अपनाएँ। आदतों से ही स्वभाव बनता है स्वभाव से ही चरित्र का निर्माण होता है। इसलिए हमें अच्छी आदतों को अंगीकार करना चाहिए बुरी आदतों का परित्याग करना चाहिए, जिससे हमारा स्वभाव आदर्श बन सके।

प्रकृति के संरक्षण और संवर्द्धन की भावना का संस्कार। प्रकृति के संसर्ग से ही मानव जीवन का अस्तित्व है। ईको फ्रैण्डली जीवन-व्यवहार के अभाव में मानव जीवन की कल्पना भयावह है।

राष्ट्र भक्ति तथा राष्ट्राभिमान के संस्कार - हमें इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि देश है तो हमारा अस्तित्व है, देश ही नहीं रहेगा तो हमारा घर परिवार कहाँ रहेगा। इस लिए देशभक्ति की भावना हमारे अंदर कूट-कूट कर भरी होनी चाहिए।

उक्त सभी बातों को विद्यालयीन शिक्षा से जोड़ने हेतु पाठ्यक्रम में आमूलचूल परिवर्तन किये जाने की महत्ती आवश्यकता है। ❑

नैतिक चरित्र एवं सांस्कृतिक-व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कारों की भूमिका

डॉ. सुदेव माटिया

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पाँचमुड़ा महाविद्यालय, पश्चिम बंगाल

मनुष्य जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए संस्कारों की महती आवश्यकता है। जन्म से पूर्व तथा जन्म के पश्चात् दोनों ही स्थिति में संस्कारों का विधान हमारे ऋषियों ने किया है। बालक की शिक्षा क्या है, मानो 'संस्कारों' की ही एक योजना है। शिक्षा का प्रश्न संस्कारों का ही प्रश्न है। वैदिक शिक्षा-शास्त्री 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' के सिद्धान्त को भी मानते थे। इसीलिए वे संस्कारों को एक गम्भीर प्रश्न समझते थे क्योंकि मानव के निर्माण में सिर्फ पर्यावरण ही एकमात्र घटक-तत्त्व नहीं है, पर्यावरण के साथ-साथ माता-पिता के संस्कार, बालक के अपने पूर्व जन्म के संस्कार- सभी हिस्सा लेते हैं इसीलिए अच्छे से अच्छे पर्यावरण में व्यक्ति नीचे-से-नीचे भी गिर जाता है, बुरे-से-बुरे पर्यावरण में भी वह ऊँचे-से-ऊँचे भी उठ जाता है। यही कारण है कि जन्म भर बालक को ऐसे संस्कारों से घेर दिया जाता था जिनकी चोट से उसके व्यक्तित्व को बनाया जा सके।

संस्कार के अर्थ

'संस्कार' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृधातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है- 'संस्करणम् इति संस्कार:'। तथा 'संस्क्रियते अनेन इति संस्कार:'। यहां पर दोनों ही स्थलों पर सुँट् का आगम होता है। संस्कार शब्द सामान्यत: परिष्कार, शुद्धि, परिमार्जन आदि अर्थों में होता है। जैमिनीय सूत्र की शाबर टीका के अनुसार-

संस्कारों नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यं कस्यचिदर्थस्य। अर्थात् संस्कार वह है, जिसके निष्पन्न हो जाने पर द्रव्य किसी प्रयोजन के लिए उपयोगी हो जाता है। आचार्य शंकर के अनुसार- 'संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा, स्याद् दोषापनयनेन वा' अर्थात् जिसके द्वारा गुणों का आधान एवं दोषों को दूर किया जाये, उसका नाम संस्कार है। महर्षि चरक के अनुसार- 'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते'। अर्थात् गुणों का सन्निवेश करना ही संस्कार है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार किसी द्रव्य को उत्तम स्थिति में लाना, इसका नाम संस्कार है।

अत: स्पष्ट है कि संस्कार का अर्थ परिष्करण, परिमार्जन एवं शुद्धीकरण के अर्थों में प्रचलित है। यह संस्कार का भाव प्रत्येक वस्तु के साथ जुड़ा हुआ है। पत्थर का संस्कार हो जाने पर वह एक सुन्दर प्रतिमा का आकार ग्रहण कर लेता है। चित्रफलक में रंगों से संस्कार होने से वह सजीव सा लगता है। भोजन का संस्कार हो जाने पर वह और अधिक स्वादिष्ट एवं पुष्टिवर्धक बन जाता है। इसी प्रकार बालक के लिए भी संस्कार इसी अर्थ में ग्रहण किये गये हैं। संस्कारों के माध्यम से उसके समस्त दोषों को हटा दिया जाता है तथा उसे

श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रवर्तित किया जाता है। नारायण पण्डित के अनुसार - 'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्। अर्थात् जिस प्रकार मिट्टी के नवीन पात्र में जिस वस्तु का संस्कार पहले हो जाता है वह उसमें सदैव विद्यमान रहता है। उसी प्रकार बालक के गर्भ में रहने पर तथा बाल्यकाल में किए गए संस्कारों का प्रभाव उसके सम्पूर्ण जीवन में अक्षुण्ण रहता है। अतः मनुष्यों को सभी संस्कार करने चाहिए।

संस्कार के प्रयोजन / आवश्यकता

वर्तमान युग में संस्कारों की सर्वाधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। आज हमने भौतिक दृष्टि से पर्याप्त उन्नति की है। विज्ञान के कारण आज हमने अपने लिए अनेक प्रकार के सुख-सुविधाओं के साधन जुटा लिए हैं, परन्तु आज सुसंस्कारित नागरिकों का निर्माण नहीं हो रहा। रामायण के युग की बात करें तो संस्कारों के कारण महर्षि वाल्मीकि ने अपनी अद्भुत काव्यात्मक शैली में श्रीराम की आदर्श मातृ-पितृ भक्ति, अनुपम भ्रातृप्रेम, अनुकरणीय मित्रभाव, नियमित ईश्वर चिंतन, वसिष्ठ-विश्वामित्रादि गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, सेवा एवं उनकी आज्ञापालन की अनूठी भावना का वर्णन किया है। यज्ञ विध्वंसक राक्षसों के संहारकर्ता, वेदवेदांगों के ज्ञाता, गौ-ब्राह्मणों-निर्बलों ऋषि-मुनियों के संरक्षक, शरणागत वत्सल, संयम के धनी, एक पत्नीव्रती, समुद्र के समान धीर गम्भीर, धर्म की साक्षात् प्रतिमूर्ति, सत्यप्रतिज्ञ, वाक्पटु, प्रखर बुद्धिमान्, त्याग के अप्रतिम उदाहरण, क्षात्र धर्म के देदीप्यमान नक्षत्र, प्रजापालक, अनुपम राष्ट्रनायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मानवीय गुणों का वर्णन वाल्मीकि ने अपने इस ग्रन्थ में किया है। इन महान गुणों व संस्कारों से सम्पन्न उस समय धरती पर राम के समान कोई भी मनुष्य नहीं था, ऐसा वाल्मीकि ने अपने आदिकाव्य रामायण में नारद-वाल्मीकि संवाद में स्पष्ट किया है। महाभारत के युग की बात करें तो संस्कारों के माध्यम से ही गङ्गा ने भीष्म जैसे पराक्रमी एवं ब्रह्मचर्य शक्ति से ओत-प्रोत बालक का निर्माण किया था। अभिमन्यु का उदाहरण तो सर्वविदित है, जिसने गर्भ के अन्दर ही चक्रव्यूह भेदन की कला सीख ली थी। इसके अतिरिक्त भी भारतीय इतिहास में अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ माता-पिता ने संयुक्त संस्कारयुक्त प्रयासों से मनोवाञ्छित सन्तान की प्राप्ति की है। आज धन की अत्यधिक लोलुपता के कारण माता-पिता सुबह से रात्रि पर्यन्त कार्यालयों में कार्य करते हैं तथा बच्चों का पालन-पोषण बालगृहों (creche) में हो रहा है। यही कारण है कि जब वे बच्चे बड़े होते हैं तो वे अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम में छोड़कर अपने पर किए गये बाल्यकाल के उपकारों का बदला चुकाते हैं। प्राचीन काल में संयुक्त परिवार प्रणाली थी, जिसमें घर में वृद्धों का अत्यधिक सम्मान था तथा बालकों की परवरिश दादा-दादी के निर्देशन में होती थी। जिससे बालक संस्कारित तो होते ही थे, साथ में अपने स्वयं के माता-पिता को दादा-दादी की सेवा में तत्पर देखकर स्वयं भी माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा करने का संकल्प लेते थे। अतः आज आवश्यकता है कि भारतीय संस्कृति के प्राचीन जीवन मूल्यों को फिर से पुनरुज्जीवित किया जाये।

शिक्षा ही वह बीज है, जो मानवमानस को परिष्कृत करती है, जिससे वह संस्कारवान् बनते हैं। यदि परिष्कृत व संस्कारित शिक्षा नहीं मिली, तो मानव की कल्पना, व्यक्तित्व विकास की कल्पना फिर अनर्गल प्रलाप मात्र रहेगा। अतः शिक्षा का उद्देश्य यही है कि अच्छे संस्कार समुन्नत और विकसित होकर दूषित संस्कारों के ऊपर हावी हो जायें अथवा विवेक जाग्रत हो जावे पर बीज के समान उसके अंकुर प्ररोह की क्षमता ही नष्ट हो जाए यदि यह स्थिति उत्पन्न हो जाए तो शिक्षा की सार्थकता हो जाए।

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।

अर्थात् स्वाध्याय, जप, यज्ञ, महायज्ञ आदि को वैदिक विधि-विधान पूर्वक करने से मानव शरीर ब्राह्मीय शरीर हो जाता है। अर्थात् संस्कारों से मनुष्य शरीर को मोक्ष का अधिकारी बनाया जाता है अथवा ब्रह्म को प्राप्त करने योग्य बनाया जाता है। अतः संस्कार एक परम्परा मात्र नहीं है, अपितु स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर की मानसिक व शारीरिक शुद्धि के लिए वैदिक मन्त्रों एवं प्रक्रियाओं के साथ जो क्रियाएँ की जाती हैं, उन्हीं को हमारे महर्षियों ने संस्कार कहा है।

वर्तमान में यदि शैशव में माता तथा पिता बालकों को अच्छे संस्कार दें और आचार्य उत्तरोत्तर उनकी वृद्धि करें, तो वास्तव में ही शिक्षा सही दिशा में होगी। शिक्षा के उद्देश्य की चर्चा करें तो उपनिषद की पंक्ति कहती है कि- ''सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै''। अर्थात् गुरु और शिष्य दोनों मिलकर प्रार्थना करते हैं कि हमारा अध्ययन साथ-साथ हमारी रक्षा करे। वह हमारे भोजनाच्छादन की व्यवस्था करने वाला हो, वह हम दोनों के बल का संवर्धन करे। वह हमारा अध्ययन तेजस्विता को प्राप्त हो, हम परस्पर द्वेष न करें। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में शिक्षा प्रणाली में संस्कार के पाँच उद्देश्य हमारे समक्ष हैं -

1. स्वात्मरक्षा (सह नौ अवतु) - स्वात्मरक्षा अर्थात् व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाना। व्यक्ति आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी तभी बनेगा, जब वह ब्रह्मचर्य का पालन करे, क्योंकि बिना ब्रह्मचर्य के शरीर, मन,

बुद्धि का समुचित विकास सम्भव नहीं और इनके विकास के बिना मानव का विकास नहीं हो सकता है, तो फिर आत्मरक्षा कैसे होगी?

स्वात्मरक्षा से अन्य तात्पर्य यह भी है कि व्यक्ति को ज्ञानार्जन के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए, क्योंकि इस ज्ञान से उसे स्वात्मरक्षा का मार्ग मिलेगा। ज्ञानार्जन होने पर ही मानवमस्तिष्क में विचारों का जन्म होता है। यह विचार विवेक ही जीवन में सफलता का सूत्र होता है और जब सफलता मिलेगी, तो स्वात्मरक्षा सम्भव है।

2. पालन-पोषण की व्यवस्था (सह नौ भुनक्तु) - शिक्षा का एक उद्देश्य व्यक्ति का पालन-पोषण करना है। व्यक्ति उचित शिक्षा प्राप्त कर अपने पालन-पोषण के साधन प्राप्त कर लेता है। शिक्षा के माध्यम से ही वह अथाह अर्थ अर्थात् धन पा लेता है, जिससे उसकी जीवनयात्रा कुशलता से पूर्ण होती है, परन्तु स्मरण रहे कि स्वात्मरक्षा अर्थात् ज्ञान के बिना अर्थ का कोई महत्त्व नहीं होता है। ज्ञान ही वह दिग्दर्शक होता है, जिसके द्वारा हम अपना जीवन सुव्यवस्थित कर सकते हैं। ज्ञान के अभाव में धन का सदुपयोग नहीं हो सकता है।

3. राष्ट्रचिन्तन (सह वीर्यं करवावै) - शिक्षा नागरिकों को राष्ट्रचिन्तन के प्रति जागरूक करती है। व्यक्ति के मानस भवन में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को भरती है। इसी भावना से प्रेरित नागरिक ''माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्या'' तथा ''वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम'' अर्थात् हे मातृभूमे! हम तुझ पर बलिदान करने वाले हो, इस भाव को मानव के अन्दर समाहित करती है। जब राष्ट्रहित, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रचिन्तन विद्यार्थी के मानस में होगा, तो फिर देश की उन्नति को कोई रोक नहीं सकता है।

4. चरित्र निर्माण (तेजस्विना-वधीतमस्तु) - चरित्र मानव का अमूल्य धन है, इसके बिना व्यक्ति की कल्पना करना शृंग के समान है। चरित्र से पतित व्यक्ति का विकास सर्वदा असम्भव है। जब तक व्यक्ति में चरित्र की उन्नत स्थिति नहीं होगी, तो मानव का विकास नहीं हो सकता। अथर्ववेद में कहा गया है कि ''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नतः''। ब्रह्मचर्य अर्थात वेदादि सत् शास्त्रों के अध्ययन से, ब्रह्म अर्थात् परमात्मा का चिन्तन करने से, ब्रह्म अर्थात् बल की उपासना करके शिक्षित मानव मृत्यु अर्थात् महान् विपत्तियों को भी सहर्ष सहन कर सकता है। इसलिए शिक्षा ऐसी हो, जो विद्यार्थी के चरित्र का निर्माण करे।

5. द्वेष-भावना का विनाश (मा विदविषावही) - शिक्षा ऐसी हो, जिसके माध्यम से मानव में द्वेष भावना की उत्पत्ति न हो। विद्यार्थी के अन्दर परोपकार की, सर्वसमन्वय की, सर्वरक्षा की भावना का विस्तार हो। संक्षेप में कहें तो सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः की भावना से उद्वेलित व्यक्ति ही देश हित चिंतन एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को समाहित कर सकता है, परन्तु यह भावना उत्तम संस्कार व शिक्षा के बिना सर्वथा हेममृग सदृश असम्भव है। द्वेष भावना का समुचित विनाश करने के लिए हमें अध्यात्म शिक्षा को प्राप्त करना चाहिए, जिसका वर्तमान में अभाव है।

शिक्षा ही वह बीज है, जो मानवमानस को परिष्कृत करती है, जिससे वह संस्कारवान् बनते हैं। यदि परिष्कृत व संस्कारित शिक्षा नहीं मिली, तो मानव की कल्पना, व्यक्तित्व विकास की कल्पना फिर अनर्गल प्रलाप मात्र रहेगा। अतः शिक्षा का उद्देश्य यही है कि अच्छे संस्कार समुन्नत और विकसित होकर दूषित संस्कारों के ऊपर हावी हो जायें अथवा विवेक जाग्रत हो जावे पर बीज के समान उसके अंकुर प्ररोह की क्षमता ही नष्ट हो जाए यदि यह स्थिति उत्पन्न हो जाए तो शिक्षा की सार्थकता हो जाए। आज आवश्यकता है कि शिक्षा हमें अध्यात्म, संस्कारवान्, चरित्रनिर्माण, परोपकार, देश-हित चिन्तन करना सिखाये। आधुनिक शिक्षा में इन गुणों की गवेषणा कुछ दुर्लभ है, इसीलिए शिक्षा की उचित दिशा चुनना आवश्यक है। धन अर्जन करना मात्र ही पर्याप्त नहीं है। ❑

महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा का संस्कार

श्रीमती शीला शुक्ला
सहायक शिक्षक, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय छिंदवाड़ा (मध्यप्रदेश)

संस्कार मनुष्य को महान बनाता है। संस्कारवान मानव इतिहास बना देता है। मानव की शोभा संस्कार से ही होती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अत: विद्यार्थी भी समाज, परिवार से ही संस्कार प्राप्त करता है। पाठशाला अर्थात् संस्कार मंदिर। पाठशाला में संस्कार आवश्यक है। विद्यालय में विद्यार्थी को प्रारंभ से ही संस्कार अपने-अपने परिवार से धर्म द्वारा महापुरुषों द्वारा सीखे गए संस्कार से प्रेरणा लेकर पाठशाला में आते हैं।

महापुरुषों द्वारा प्रेरणा

महापुरुषों ने सत्य बोलने का जीवन में बहुत अधिक महत्त्व बताया है। महापुरुषों ने संस्कार में अपनी वस्तु का भी आदर करना आवश्यक बताया है। महापुरुषों ने नदी से प्रेरणा लेने की भी बात कही। अच्छे संस्कार के अंर्तगत हमें भगवान श्रीकृष्ण के पैर छूने के लिए यमुना नदी उफान पर आकर उनके पैर छूने को लालायित थी भगवान श्रीकृष्ण ने भी अपने पैर सूप के नीचे कर दिए इससे एक-दूसरे के मान-सम्मान रूपी प्रेरणा का संस्कार महापुरुषों, ऋषि-मुनियों से प्राप्त होते हैं।

कुछ अच्छी बातें विद्यार्थी को याद तो रहती हैं लेकिन स्वभाव में नहीं रहती हैं अच्छी आदतें जैसे-जल्दी उठना, अपने बड़ों का प्रात: पैर छूकर आशीर्वाद लेना, समय पर सोना, सत्य बोलना, बड़ों की बातें मानना आदि अच्छे संस्कार हैं।

महापुरुषों से प्राप्त संस्कार यह प्रेरणा देते हैं कि यदि हम शिक्षा अध्ययन कर कितने भी ऊंचे पद को प्राप्त कर लें हमें हमेशा साधक बनकर कार्य करना चाहिए। हमेशा नया कुछ सीखने की प्रक्रिया जारी रखनी चाहिए। इससे हम परिवार, समाज की उन्नति में सहायक बन सकेंगे। प्रकृति में हर चीज को बढ़ने की आदत होती है उसी से प्रेरित होकर विद्यार्थी को भी निरंतर आगे बढ़ते रहना चाहिए।

विद्यार्थी को मान-सम्मान, इनाम प्राप्त करना अच्छा लगता है वे कुछ मिलने पर खुश होते भी हैं, उन्हें कुछ अलग करने की प्रेरणा भी मिलती है ऐसा करने से उन्हें मान-सम्मान खुद ही प्राप्त हो जाता है इस बात को सभी युगों-सत युग, त्रेता युग, द्वापर युग एवं कलयुग में महापुरुषों द्वारा किए गए कार्यों, सेवा-भाव आदि से उन्हें इतना सम्मान प्राप्त होता है आज सदियाँ बीत जाने के बाद भी हम उन्हें याद करते हैं इस बात का महत्त्व भी विद्यार्थी को बताना होगा।

विद्यार्थी को सेवा-भावना का उदाहरण आरुणि की गुरु भक्ति के रूप में दिया जा सकता है जिसने अपने गुरु

के आदेश को मानते हुए बरसात में रात भर खेत की मेड़ पर लेटकर पानी के बहाव को रोके रखा। ये उसकी गुरु भक्ति थी।

इसी प्रकार श्रवण कुमार की पितृ-भक्ति का उदाहरण भी विद्यार्थी को दिया जाना चाहिए। अपने अंधे माता-पिता को कावड़ में बैठा कर तीर्थ-यात्रा में लेकर जाना सेवा भाव के संस्कार की शिक्षा प्रदान करता है।

इसी प्रकार केवट का सेवा भाव बिना जाति-धर्म, भेदभाव रहित राम-भक्ति का उदाहरण हमारे सामने है। भगवान राम ने ऋषि-मुनियों की सहायता करना, दानवों द्वारा आतंक मचाये जाने पर विश्वामित्र के आश्रम में दानवों का संहार कर मुनियों की सहायता करना ऐसे उदाहरण देकर विद्यार्थियों के मन में महापुरुषों के मार्गदर्शन में सहयोग की भावना का संस्कार देना।

भगवान श्रीराम का उदाहरण देकर उनके दिव्य जीवन से प्रेरणा लेने से विद्यार्थी, जीवन में सफलता पा सकते हैं।

महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग में दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, लोकमान्य तिलक, लालबहादुर शास्त्री, अब्दुल कलाम आजाद, शिवाजी, सुभाषचंद्र बोस, गुरुनानक आदि महापुरुषों के जीवन-चरित्र को समायोजित किया जाना आवश्यक है इससे विद्यार्थी इनसे अच्छे संस्कार प्राप्त कर अच्छे इंसान बन कर समाज एवं देश के हित में कार्य करने के लिए प्रेरित होंगे और अपने सभी कार्यों को सुनियोजित कर देश की उन्नति में सहायक हो सकेंगे। विद्यार्थी में संस्कार के साथ स्वयं स्वावलंबी बनने की शिक्षा देना चाहिए।

कृष्ण-सुदामा की मित्रता का अनुपम उदाहरण है। एक निर्धन ब्राह्मण का एक राजा के साथ मित्रता का संस्कार विद्यार्थी को बताना बहुत आवश्यक हो जाता है हमारी शाला में सभी धर्मों के तथा अमीर-गरीब सभी प्रकार के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं उन्हें इसी प्रकार की शिक्षा देने से उनके जीवन में सहायता करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

स्वतंत्रता के लिए हमारे देश में वीर पुरुषों, वीर सपूतों, वीरांगनाओं की देशभक्ति की वीर गाथाएँ, हमारे देश की स्वाभिमान एवं संस्कृति ही है जिनके चरित्र में संस्कार कूट-कूट कर भरे थे वह छात्र जीवन से ही स्वतंत्रता के आंदोलन में कूद पड़े और अपनी जान की परवाह किए बिना शहीद होकर भी आजादी दिलाई इस प्रकार अनेक अच्छे शिक्षाप्रद नैतिक शिक्षा के द्वारा पाठशाला में अच्छे चरित्र के संस्कार देने में सक्षम होंगे अतः नैतिक शिक्षा भी संस्कार के लिए आवश्यक है।

महापुरुष का आदर्श महापुरुषों के आदर्श गुणों, शिक्षा सिद्धांतों को जीवन में उतारने की प्रेरणा मिलती है। महापुरुषों के जीवन से हमें जीवन जीने की कला प्राप्त होती है प्रत्येक समस्या का समाधान मिलता है, कैसे जीवन जीना है ? इसका बोध होता है प्रभु स्तुति करने से जीवन को सम्यक ज्ञान, श्रद्धा, चिंतन-मनन, शक्ति और सदाचरण करने का बल प्राप्त होता है प्राचीन भारत में संस्कारों का छात्रों के जीवन में विशेष महत्त्व है। संस्कारों के द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज दोनों का कल्याण करता है। स्वस्थ, सुखी और सम्मानित जीवन जीने का आधार संस्कार है। छात्र में खेल, बालसभा आदि पाठ्यक्रम में होगा तो छात्र में संस्कार होंगे और उनका जीवन चरित्र भी अच्छा होगा।

श्री कृष्ण की गुरु भक्ति सांदीपनी आश्रम में शिक्षा पूर्ण होने पर गुरुदक्षिणा माँगने पर गुरु माँ के द्वारा उनके पुत्र को पाताल से भी निकालकर लाने का प्रसंग हमारी भारतीय संस्कृति से गुरु की आज्ञा पालन, गुरु के लिए श्रद्धा भाव, वचन की दृढ़ता व कर्तव्य पालन का बोध कराती है। स्वतंत्रता के लिए हमारे देश में वीर पुरुषों, वीर सपूतों, वीरांगनाओं की देशभक्ति की वीर गाथाएँ, हमारे देश की स्वाभिमान एवं संस्कृति ही है जिनके चरित्र में संस्कार कूट-कूट कर भरे थे वह छात्र जीवन से ही स्वतंत्रता के आंदोलन में कूद पड़े और अपनी जान की परवाह किए बिना शहीद होकर भी आजादी दिलाई इस प्रकार अनेक अच्छे शिक्षाप्रद नैतिक शिक्षा के द्वारा पाठशाला में अच्छे चरित्र के संस्कार देने में सक्षम होंगे अतः नैतिक शिक्षा भी संस्कार के लिए आवश्यक है। ❑

पक्षपातपूर्ण विद्वता के कुछ उदाहरण जो भारत में राष्ट्रवाद और देशभक्ति के विचारों को बदनाम करते हैं, लेकिन किसी तरह प्रगतिशीलता के रूप में सामने आते हैं, यह समझाने के लिए आवश्यक है कि वाम-उन्मुख भारतीय शिक्षा जगत कितना प्रतिक्रियावादी हो सकता है। चिंता की ऐसी आवाजें वास्तव में पुरानी व्यवस्था के अवशेषों के गहरे डर का प्रतीक हैं जो हमारे देश के वंचित क्षेत्रों में कक्षाओं को अपने राजनीतिक एजेंडे के भविष्य के पैदल सैनिकों के लिए भर्ती मैदान और युवाओं को राष्ट्रवाद और देशभक्ति से उन्मुख करने के स्थान के रूप में देखते हैं।

कक्षाओं में देशभक्ति का शिक्षण और मूल्य बोध : एक विवेचन

मैनाक पुताटुंडा
सह आचार्य,
हरिभाउ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय,
हटूंडी, अजमेर (राज.)

भारत का एक बड़ा बौद्धिक वर्ग, जो एक ऐसे शैक्षिक और विद्वान मण्डलीय वातावरण में प्रशिक्षित हुआ है जहाँ मुख्य ध्यान विभाजनों की पहचान और यथार्थीकरण पर था बल्कि समानताओं की खोज का प्रयास करने की जगह, उसे राष्ट्रभक्ति पर चर्चा करते समय अयोग्य और असुरक्षित महसूस होता है। भारतीय शैक्षिक संस्कृति का शाप रहा है कि नेहरुवादी भूतकाल और उससे जुड़ी वाम-उदारवाद की बौद्धिक पाबंदी को छोड़ना कठिन हो रहा है। हालांकि यह एक सच्चाई है कि हमारे स्कूलों और कॉलेजों में अधिकांश शिक्षक अपने व्याख्यानों के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय दिवसों पर देशभक्ति समारोहों में छात्रों की भागीदारी के माध्यम से अपने छात्रों में देशभक्ति की भावना पैदा करने की पूरी कोशिश करते हैं लेकिन यह तर्क किया जा सकता है कि स्कूल स्तर पर शिक्षक अक्सर एक केवल शिक्षाकर्ता बन जाता है जिसका सम्पूर्ण प्रयास नीति निर्माताओं और पाठ्यपुस्तक लेखकों के निर्देशों द्वारा मार्गदर्शित होता है। यह गंभीर चिंता का विषय है कि ऐसे प्रभावशाली पदों पर बैठे कई व्यक्ति अभी भी पुरानी और त्याग दी गई विचारधाराओं का पालन करते हैं जो देशभक्ति जैसी अवधारणाओं की निंदा करते हैं।

पक्षपातपूर्ण विद्वत्ता के कुछ उदाहरण जो भारत में राष्ट्रवाद और देशभक्ति के विचारों को बदनाम करते हैं, लेकिन किसी तरह प्रगतिशीलता के रूप में सामने आते हैं, यह समझने के लिए आवश्यक है कि वाम-उन्मुख भारतीय शिक्षा जगत कितना प्रतिक्रियावादी हो सकता है।

नलिनी राजन ने पहली एनडीए सरकार के उद्घाटन के तुरंत बाद लिखते हुए तर्क दिया कि कक्षाओं में देशभक्ति पढ़ाना भारतीय राज्य की बहुलवादी और धर्मनिरपेक्ष प्रकृति के खिलाफ एक अधिनियम है। कक्षा में देशभक्ति सिखाने की माँग को 'मानवता की वापसी' के प्रमाण के रूप में देखा गया था। इसे एक चिंताजनक प्रक्रिया माना गया जो स्पष्ट रूप से स्वतंत्र सोच और अधिकारियों से सवाल करने की क्षमता के अंत का कारण बनती है। ऐसे चिंतित विद्वानों के अनुसार, देशभक्ति गंभीर रूप से सोचने वाले व्यक्तियों को श्रमिकों की एक नासमझ सेना के साथ बदलने का एक उपकरण भी बन सकती है जो केवल 'बाजारू कौशल' सीखेंगे। दूसरे शब्दों में, वाम-झुकाव वाले बुद्धिजीवियों द्वारा देशभक्ति की कल्पना एक ऐसे विचार के रूप में की जाती है जो व्यक्तिवाद और विशिष्टता के सीधे विरोध में है और जो सामूहिकता और सामाजिक अनुशासन में सहायता करता है।

'इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली' में प्रकाशित एक लेख में नंदिनी सुंदर ने छत्तीसगढ़ के एक विशेष क्षेत्र में वनवासी कल्याण आश्रम, एकल विद्यालय फाउंडेशन और सेवा भारती की गतिविधियों पर अपने अध्ययन के परिणाम प्रस्तुत किए। वह इस बात से इनकार नहीं कर सकीं कि आदिवासी इलाकों में इन संगठनों द्वारा चलाए जा रहे स्कूल वास्तव में छात्रों के लिए फायदेमंद साबित हो रहे हैं और आदिवासी बच्चों के माता-पिता इन संगठनों के काम से बहुत प्रभावित हैं। हालाँकि, उन्हें इन स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों द्वारा भारतीय संस्कृति और मूल्यों को विकसित करना बेहद आपत्तिजनक लगा। वह एक ही स्थान पर चलने वाले मिशनरी स्कूलों के साथ अधिक सहज थी क्योंकि उन स्कूलों में, 'हैलो' या 'गुड मॉर्निंग' के बजाय 'नमस्ते' कहने जैसे भारतीय शिष्टाचार का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने अपने शिक्षक के पैर छूने और उन्हें 'सर' या 'मैडम' के बजाय 'गुरुजी' कहने की प्रथा पर विशेष रूप से आपत्ति जताई। किसी को आश्चर्य होता है कि अगर उन्हें गुरुकुल प्रणाली के दिनों में वापस जाना पड़े तो वह क्या करेंगी, जहाँ अमीर और गरीब, छात्रों को समान रूप से अपने शिक्षकों को अत्यधिक सम्मान देना पड़ता था।

देशभक्ति सिखाने का स्पष्ट प्रभाव न केवल छात्रों पर बल्कि उनके परिवार पर भी उनके द्वारा देखा गया। इस सफलता का उत्सव मनाने के बजाय, वह इससे अत्यधिक सावधान थी। हमारे बुद्धिजीवियों के एक प्रभावशाली वर्ग के इस रवैये को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए या केवल कुछ शहरवासियों की बकवास के रूप में नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए, जिनका भारत की ग्रामीण शिक्षा प्रणाली से कोई वास्तविक संबंध नहीं है। चिंता की ऐसी आवाजें वास्तव में पुरानी व्यवस्था के अवशेषों के गहरे डर का प्रतीक हैं जो हमारे देश के वंचित क्षेत्रों में कक्षाओं को अपने राजनीतिक एजेंडे के भविष्य के पैदल सैनिकों के लिए भर्ती मैदान और युवाओं को राष्ट्रवाद और देशभक्ति से उन्मुख करने के स्थान के रूप में देखते हैं।

किसी समाज में जबरदस्ती सामंजस्य स्थापित करने के कल्पित बहुसंख्यकवादी प्रयास के साथ देशभक्ति को जोड़ने की प्रवृत्ति एक विशेष राजनीतिक विचारधारा के विद्वानों के बीच सार्वभौमिक प्रतीत होती है। समकालीन दर्शन और नारीवाद के सबसे प्रसिद्ध विद्वानों में से एक, मार्था नुसबौम का 2012 का एक लेख देशभक्ति सिखाने के परिणामस्वरूप महत्त्वपूर्ण तर्कसंगतता के कथित नुकसान पर केंद्रित है...। वह संयुक्त राज्य अमेरिका में 'यहोवा के साक्षी' नामक एक संप्रदाय के खिलाफ हिंसा की कुछ घटनाओं का जिक्र करके देशभक्ति मूल्यों के प्रचार के अंतर्निहित 'खतरों' को इंगित करने का प्रयास करती है, जो उनकी मातृभूमि के प्रति 'निष्ठा की प्रतिज्ञा' लेने से इनकार करने के कारण उत्पन्न हुई थी। क्योंकि उनका मानना था कि 'निष्ठा की शपथ' उनके संप्रदाय की कुछ धार्मिक मान्यताओं के विपरीत है। यहाँ, पाठक को भारत में 'वंदे मातरम्' बहस के साथ समानताएँ मिल सकती हैं और स्व-घोषित भारतीय बुद्धिजीवियों की तरह, नुस्बाम अल्पसंख्यकों और अन्य कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के अधिकार के बारे में तर्कों का सहारा लेकर ऐसे देशभक्तिपूर्ण संकेतों के महत्त्व को बदनाम करने का प्रयास करते हैं। हालाँकि, नुसबौम भी आपातकाल के दौरान राष्ट्र पर देशभक्ति के स्फूर्तिदायक और एकजुट प्रभाव से इनकार नहीं कर सकीं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे बुद्धिजीवियों को देशभक्ति से कोई समस्या नहीं है जब इससे उनकी जान बचती है, लेकिन जैसे ही यह उनके आत्म-संरक्षण के उद्देश्य को पूरा करती है, वे इसकी कटु आलोचना करना शुरू कर देते हैं।

यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि वाम-उन्मुख बुद्धिजीवियों का प्रभाव केवल अकादमिक बहस तक ही सीमित नहीं है। वही मानसिकता जो देशभक्ति की शिक्षा में फासीवाद का भूत देखती है, अगर कट्टरपंथी विचार भारतीय मूल्यों के विपरीत होते हैं तो उत्सुकता से उनकी सराहना करती है। पश्चिम बंगाल का मामला, जहाँ से लेखक आते हैं, इन बुद्धिजीवियों के चयनात्मक उदारवाद का एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में काम कर सकता है।

कुछ पाठकों को आश्चर्य हो सकता है जब लेखक कहता है कि उनकी 11वीं कक्षा की राजनीति विज्ञान की पहली पाठ्यपुस्तक किसी अन्य से ही, बल्कि जोसेफ स्टालिन के उदाहरण और उसका पूरा पृष्ठ चित्र के साथ शुरू हुई थी! यह 2005 में था, जब स्टालिन अपने देश में लंबे समय से भूले जा चुके थे। यह कोई अकेली घटना नहीं थी। वास्तव में, राजनीति विज्ञान, इतिहास या समाजशास्त्र जैसे कई विषयों के पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में मार्क्सवादी आदर्शों का आंतरिककरण और धर्मनिरपेक्षता की एक विकृत अवधारणा आम थी। बंगाली बच्चों को राजा प्रतापदित्य या कोच साम्राज्य के शासकों जैसे बंगाली नायकों के गौरवशाली संघर्षों के बारे में पढ़ाने के बजाय, इतिहास का पाठ्यक्रम टिटुमिर जैसे धार्मिक कट्टरपंथियों की 'वीरता' पर केंद्रित था, जिन्हें शहीदों का दर्जा दिया गया था।

यह गंभीर चिंता का विषय है कि पुराने शासन की बौद्धिक इमारतें अभी भी न केवल बंगाल में, बल्कि देश के कई प्रभावशाली प्रशासनिक और शैक्षणिक केंद्रों में खड़ी है। ऐसी स्थिति में, हमारे युवाओं में देशभक्ति के मूल्यों को विकसित करना पहले से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे में, शिक्षकों को यह सुनिश्चित करना होगा कि भारत की कक्षाएँ वह लक्ष्य बनें जहाँ से भविष्य के देशभक्त नागरिक निकलेंगे। ❑

भारतीय सनातन शिक्षा में मानवीय मूल्यों का संस्कार

डॉ. प्रशांत सरकार

सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग,
कार्सियांग कॉलेज, कार्सियांग,
दार्जिलिंग (पश्चिम बंगाल)

संस्कार शब्द का मूल अर्थ है, 'शुद्धीकरण'। किसी वस्तु के रूप को बदल देना या उसे नया रूप देना ही संस्कार है। सनातन हिंदू परंपरा में संस्कारों का मूल उद्देश्य व्यक्ति में अभीष्ट गुणों को जन्म देना है। प्राचीन भारत में संस्कारों का मनुष्य के जीवन में विशेष महत्त्व रहा है। संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज दोनों का कल्याण करता है। संस्कार ही वह क्रिया है जिससे मनुष्य में मनुष्यत्व और मानवीय मूल्यों एवं गुणों का विकास होता है। इसीलिए स्कंद पुराण खंड 18 के अध्याय 239 में यह विशेष उक्ति कितना सटीक है कि 'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते' अर्थात् सभी मनुष्य जन्म से शूद्र होते हैं एवं संस्कार द्वारा मनुष्य का द्वितीय जन्म होता है। संस्कार के माध्यम से ही मनुष्य का निर्माण होता है। इसीलिए सनातन परंपरा में मानव जीवन के लिए सोलह-संस्कारों का विधान है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन में सोलह बार मानव को बदलने का, उसके नव-निर्माण का प्रयत्न किया जाता है। चरक ऋषि ने कहा है - 'संस्कारो हि गुणन्तराधानमुच्यते' अर्थात् संस्कार पहले से विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उनकी जगह सद्गुणों का आधान कर देने का नाम है। जाहिर-सी बात है संस्कार मानव जीवन के नव-निर्माण की योजना है। जहाँ तक मानवीय मूल्यों की बात है वह सार्वभौम मानवीय मूल्यों से तात्पर्य है। अर्थात् मानवीय नैतिक कर्तव्यों व दायित्व से हैं जिनका महत्त्व प्रायः सभी देशों, संस्कृतियों एवं कालों में होता आया है। परम पिता परमात्मा का वेद में यह उपदेश हैं -

यथेमां वाचः
कल्याणीमावदानिः जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याम् शूद्राय
चार्याय च स्वाय चरणाय च।
प्रियो देवानां दक्षिणायै
दातुरिह भूयासमय मे कामः
समृध्यतामुप मादो नमतु॥

(यजुर्वेद - 26/ 2)

अर्थात् ईश्वर का उपदेश है कि हे मनुष्य! जैसे मैं इस कल्याणकारी वेद ज्ञान का समस्त मनुष्य मात्र के लिए, ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए, वैश्य के लिए, शूद्र के लिए, स्वजन के लिए और परजन के लिए, प्रियजनों के लिए और अप्रियजनों के लिए एवं सब लोगों के कल्याण के लिए सब प्रकार से उपदेश करता हूँ, वैसे आप लोग भी सबके कल्याण के लिए अच्छी प्रकार से उपदेश किया करो। ऐसे न जाने कितने ही मानवीय मूल्यों पर आधारित उपदेश परमपिता परमात्मा ने मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए दिए हैं। परमात्मा का यह भी उपदेश हैं -

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो
विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अराव्णः।

(ऋग्वेद - 9/63/5)

अर्थात् ज्ञानी, तपस्वी महापुरुष सदा सर्वदा इन्द्र-परमेश्वर का आज्ञा पालन करते हुए स्वयं तो श्रेष्ठ बने साथ-साथ संसार के लोगों को भी श्रेष्ठ बनावें अर्थात् विश्व को आर्य (भद्र) बनाते हुए कृपण, कंजूस को दूर भागते हुए आगे बढ़ते जाए और सदा ही उन्नति की ओर अग्रसर होते रहें। इस तरह 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनने का उपदेश परम पिता परमात्मा ने मनुष्य मात्र के लिए मनुष्य बनने के लिए दिया है और यही वह परंपरा है, जो सत्य सनातन संस्कृति की कल्याणकारी भावना है। सिर्फ यही नहीं इससे भी आगे परमात्मा मनुष्य के लिए उपदेश देते हैं -

अयं निजः परो वेति
गणना लघुचेतसाम।
उदारचरितानाम् तु
वसुधैव कुटुम्बकम्।।

(हितोपदेश- 1/69)

अर्थात् वसुधा को कुटुम्ब मानो, समस्त संसार को कुटुम्ब की नजर से देखो। वसुधा में कुटुम्ब का भाव होने पर, सारे कुटुम्ब पर प्यार का भाव होगा। कुटुम्ब में समता का साम्राज्य स्थापित होता है, विषमता का नहीं। समता स्थिर रखने के लिए स्नेही का व्यवहार होना अति आवश्यक है, तभी तो वेद में यह भी उपदेश मिलता है-

दृते वृहमा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि
भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

(यजुर्वेद - 36/18)

अर्थात् परमात्मा जिस प्रकार समस्त प्राणियों के प्रति यथोचित स्नेह और मित्र की दृष्टि से निहारते हैं वैसे ही हम सभी मानव उसी भाव का व्यवहार करें, सब प्राणियों को मित्र की, स्नेह और विश्वास की आँख से, सहृदय दृष्टि से देखें। यहाँ पर वेद का उपदेश सिर्फ मनुष्य सीमा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उससे भी आगे निकल कर यह उपदेश देता है कि प्यार का अधिकारी सिर्फ मनुष्य मात्र ही नहीं है, परंतु प्रत्येक प्राणी इसका समान अधिकारी है। यह उचित भी है, क्योंकि 'मनुष्य' शब्द का अर्थ है - ''मत्वा कर्माणि सीव्यति'' अर्थात् जो विचार कर कर्म करे, अंधाधुंध कर्म न करे। कर्म करने से पूर्व जो भली प्रकार विचार करे, कि मेरे इस कर्म का क्या फल होगा? किस-किस पर इसका क्या-क्या प्रभाव होगा? यह कर्म भूतों के दुःख या

प्राचीन वैदिक काल में गुरुकुल ही शिक्षा का मूल केंद्र हुआ करता था, जो संस्कार आधारित शिक्षा पद्धति होती थी जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान, आधिदैविक ज्ञान और आधि भौतिक ज्ञान के साथ-साथ बालकों में नैतिक चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कारों का बहुत महत्त्व होता था। वर्तमान में आज भी शिक्षा के साथ मानवीय मूल्यों के बोध पर आधारित संस्कार की बहुत आवश्यकता है।

प्राणियों की पीड़ा का कारण तो नहीं बनेगा? इसीलिए मनुष्य में मानवता के गुणों का विकास होना आवश्यक है और मानव में इन गुणों की वृद्धि सिर्फ संस्कार से ही सम्भव हो सकती है।

सनातन परंपरा में यज्ञादि जो भी अनुष्ठान किया जाता है वह संस्कार का ही एक अंश है जिसमें मानवीय मूल्यों के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा भी दी जाती है। यज्ञ के अंत में प्रार्थना मन्त्र किया जाता है-'ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय' आर्थात् प्रार्थना यह है कि हे परमेश्वर! परम पिता परमात्मा, आप हमें असत से सत्य की ओर ले चलो, हमारे मध्य में जो कुछ भी अंधकार छाया हुआ है वह हमसे दूर कीजिए और प्रकाश की ओर ले चलें। जीवन भर ऐसे उत्तम मार्ग पर चलते हुए हम अमृत को प्राप्त होवें। साथ में यह भी प्रार्थना मन्त्र किया जाता है-

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

अर्थात् सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें एवं प्रत्येक एक दूसरों के प्रति भद्र भाव से देखें, भद्र व्यवहार करें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े। ऐसे अनेक मंत्रों का अक्सर सभी प्राणियों में सकारात्मकता, कल्याण और सद्भाव फैलाने के इरादे से जप या पाठ किया जाता है एवं अंत में बार-बार दोहराई जाने वाली 'शांति' आंतरिक और बाहरी शांति की इच्छा पर जोर दिया जाता है। अगर हम प्राचीन भारतीय शिक्षा की ओर ध्यान दें, तो भारतीय शिक्षा पद्धति संस्कार आधारित शिक्षा पद्धति बनी रह सकती है। तब विद्यार्थी गुरुकुल में जाकर विद्याध्यायन करता था। गुरुकुल में विद्यार्थी को उपनयन संस्कार द्वारा गुरु गृह अर्थात् गुरुकुल में प्रवेश लिया जाता था। चाहे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचंद्र के आचार्य वशिष्ठ के गुरुकुल में प्रवेश की बात हो या चाहे योगी राज भगवान श्रीकृष्ण के आचार्य संदीपन मुनि के गुरुकुल में प्रवेश की बात हो। प्राचीन वैदिक काल में गुरुकुल ही शिक्षा का मूल केंद्र हुआ करता था, जो संस्कार आधारित शिक्षा पद्धति होती थी जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान, आधिदैविक ज्ञान और आधिभौतिक ज्ञान के साथ-साथ बालकों में नैतिक चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कारों का बहुत महत्त्व होता था। वर्तमान में आज भी शिक्षा के साथ मानवीय मूल्यों के बोध पर आधारित संस्कार की बहुत आवश्यकता है।

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि भारतीय संस्कार परंपरा में सिर्फ अध्यात्म ज्ञान ही नहीं है, उसमें ज्ञान है, शिक्षा है, व्यवहार है एवं मानवीय मूल्य-बोध पर आधारित शिक्षा और दीक्षा भी है। ❑

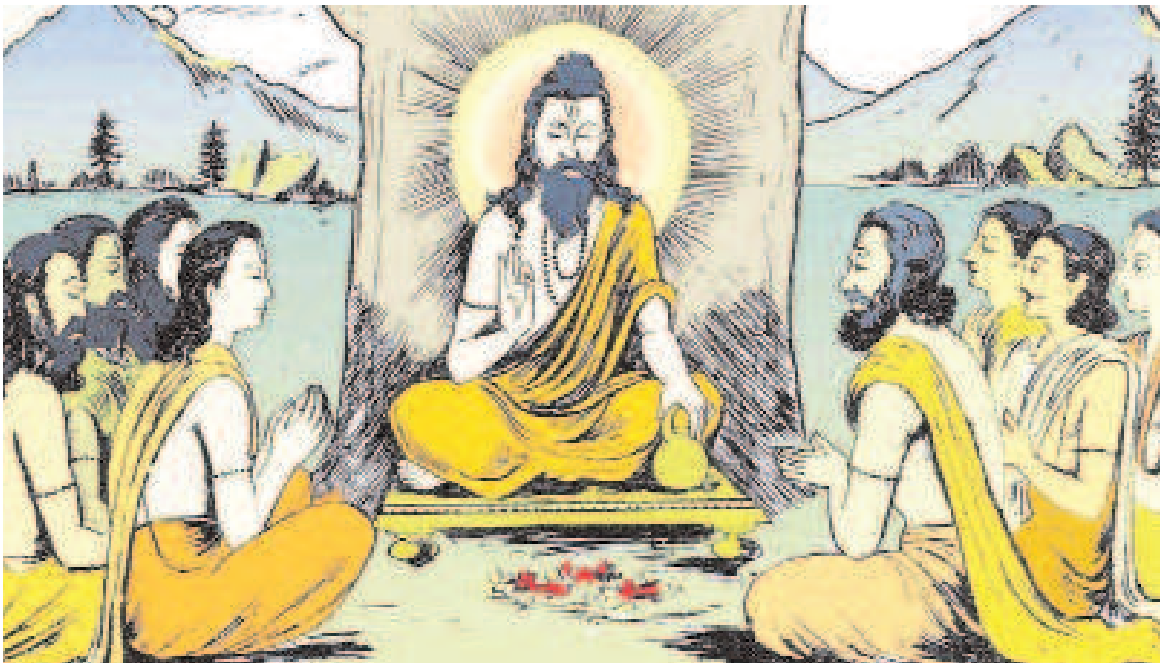

शिक्षा, संस्कृति और मानवीय मूल्य

श्रीमती ऊषा पांडेय
शिक्षक, शा. पुर्व. मा. शाला, रूआबांधा, भिलाई, जिला दुर्ग (छत्तीसगढ़)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बालकों की शिक्षा के साथ मानवीय मूल्यों को भी जोड़ा गया है। शिक्षा के साथ मानवीय मूल्यों की उपयोगिता आज हर क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रही है। शिक्षा और मानवीय मूल्य एक दूसरे के पूरक हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा सिर्फ किताबी ज्ञान बनकर रह गया है जो सिर्फ बच्चों को 'रटाओ और पास करो' के सिद्धांत पर कार्य कर रही है, जिसके कारण बालकों में नैतिक चरित्र एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व का निर्माण नहीं हो पा रहा है। बालकों की इच्छा शक्ति जीवन निर्माण की शिक्षा के साथ मानवीय मूल्यों की स्थापना कराना आवश्यक हो गया है, जिससे वे योग्य नागरिक बन सकें। मानवीय मूल्य वैसे तो बहुत हैं जिनका विकास बहुत पहले गुरुकुल के माध्यम पुराण, अस्त्र शस्त्र शिक्षा से हमारे देश में बच्चों को दिया जाता था। जिसमें वेद वेदांग की जीवनोपयोगी कार्य की शिक्षा दी जाती थी, बड़े-बड़े आश्रमों में ऋषि मुनि इस कार्य को करते थे, जहाँ बच्चा पाँच साल की उम्र में जाकर जबतक पारंगत न हो, शिक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए हर आयामों में से गुजरना पड़ता था। गुरुकुल में बच्चा अपना हर कार्य खुद करता था और जब वह निकलता था तो एक योग्य नागरिक कुशल प्रशासक, कुशल सैनिक बनकर समाज में अपनी पहचान स्थापित करता था।

परंतु विदेशी शासकों के आने के उपरांत उन्होंने अपने धर्म एवं संस्कृति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से शिक्षा में परिवर्तन किया। प्राचीन समय में हमारे देश में तक्षशिला एवं नालंदा जैसे विश्वविद्यालय स्थापित थे जहाँ विदेशों से भी आकर बच्चे शिक्षा ग्रहण करते थे।

जो विदेशी आक्रमण एवं धर्म की शिक्षा के कारण नष्ट कर दिया गया। मानवीय मूल्यों का तात्पर्य धैर्य, अनुशासन, साहस, दया, करुणा, प्रकृति प्रेम, इमानदारी, शोक संताप, कर्तव्यनिष्ठा, सत्यता अहिंसा, सम्मान जैसे गुणों का विकास कर वयक्तित्व निर्माण में सहायक बने। यह उद्देश्य शिक्षा का होना चाहिए। इसके लिए नये पाठ्यक्रम का निर्माण करना अतिआवश्यक है, जिसमें इन सभी गुणों का समावेश हो, शिक्षा को पढ़ने के बजाए अनुभव कर सीखने पर आधारित किया जाना आवश्यक है। तभी बालक रटन्त शिक्षा से उबर सकता है।

शिक्षा में जीवन के उपयोगी कार्यों का समावेश बहुत ही आवश्यक है। जो उनको आत्मनिर्भर बनाने में सहायक

होगा जिससे वे अपने आपको बेरोजगारी से हटकर स्वावलंबी बनने की प्रेरणा पा सकेंगे। मानवीय मूल्यों के अंतर्गत धैर्य का तात्पर्य ये है कि हम जो कार्य कर रहे हैं, उसमें पूरी तरह पारंगत होने तक उस कार्य को धैर्यपूर्वक सीखें, एक कार्य को करना छोड़कर दूसर कार्य न करें, तभी हम उस कार्य में पारंगत हो सकते हैं।

अनुशासन जीवन का सफल आधार है। जबतक हम अनुशासित न होगें, तब तक हम किसी कार्य में सफल नहीं होंगे। अनुशासन ही व्यक्ति को महान बनाता है। किसी कार्य को जब हम अनुशासित होकर करेंगे तभी सफल हो पायेंगे। जैसे अनुशासन आज सिर्फ सेना में ही दिखाई देता है। आज किसी कार्य में सफल होना है, तो अनुशासन में ही रहकर कार्य करने से हम सफल हो पायेंगे।

मानवीय मूल्य में साहस का स्थान सर्वोपरि है। किसी कार्य को करने के लिए हमें अपने आप में साहस पैदा करना होगा, तभी हम उस कार्य में सफल हो पायेंगे। आज शिक्षा प्रणाली में बच्चे में इसका सर्वथा अभाव दिखाई देता है। बच्चे कार्य में असफल होने पर आत्महत्या जैसे अपराध से अपने परिवार को एवं देश को एक बेहतर नागरिक से वंचित कर रहे हैं। साहस का महत्त्व हर क्षेत्र में है। अध्ययन-अध्यापन से लेकर जीवन के कई निर्णायक मोड़ों पर हमें इसकी जरूरत पड़ती है। साहस के माध्यम से हम कोई भी असंभव कार्य को संभव कर सकते हैं।

दया से तात्पर्य है, अहिंसा, हर प्राणी मात्र से प्रेम करना, उसको जीवन देना, उसके जीवन की रक्षा करना। जिस मानव में दया का भाव नहीं, वह मानव नहीं पशु है। दया के बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं है।

दया एवं करुणा को लोग एक ही समझते हैं। परंतु दोनों के भाव में बहुत अंतर है। दया में किसी प्राणी को देखकर जो भाव उत्पन्न होता है, वह दया होती है, परंतु करूणा में किसी की तकलीफ को देखकर जो भाव उत्पन्न होता है वह करुणा होती है। करुणा के बिना दया की उत्पति नहीं होती है। यह हमारे हृदय का मुख्य भाव होता है।

प्रकृति हमारी अमूल्य धरोहर है। प्रकृति धरती का शृंगार है, इसके बिना जीवन संभव नहीं है। आज मनुष्य प्रकृति को नष्ट करने पर तुला है। कल-कारखानों का धुआँ, मोटर गाड़ियों का धुआँ, नदियों को प्रदूषित करना, पेड़ों जंगलों की अंधाधुंध कटाई से प्रकृति पूरी प्रदूषित हो गयी है। ए.सी., फ्रिज की सी.एफ.सी. गैस से ओजोन परत नष्ट हो रही है, जिसके कारण प्रकृति में संतुलन बिगड़ गया है, जिसके दुष्परिणाम आज परिलक्षित हो रहे हैं, जैसे साँस की बीमारी, शुद्ध हवा पानी का अभाव, पर्यावरण असंतुलन जैसे बेमौसम बरसात, भूकम्प, बाढ, अकाल, सुनामी, जैसे दुष्परिणाम मिल रहे हैं। मानवीय मूल्यों का विकास कर हम इसके प्रति पेड़-पौधों का रोपण करके, सी.एन.जी. का उपयोग करके, नदियों की सफाई का ध्यान रखकर सजग कर सकते हैं।

आज के समय में इन मानवीय गुणों का विकास करना महती आवश्यकता है नहीं तो हमारे युवा वर्ग रास्ते से भटक कर हिंसा, बेरोगारी, आत्महत्या, तनाव जैसे दुर्भावनाओं को अपनायेंगे और हमारा देश पुनः एक बार फिर विदेशी मानसिकता के चंगुल में फँस जाएगा। यह बहुत ही चिंतनीय एवं सोचनीय विषय है। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस पर विचार किया है यह स्वागतेय है। अब जरूरत है इसको अमली जामा पहनाने की, तभी हम एक स्वस्थ नागरिक और उन्नत राष्ट्र की परिकल्पना को साकार कर सकते हैं।

अध्यात्म समपन्नता मानवीय गुणों को एक विशिष्ट पहचान दिलाती है। अध्यात्म एक बहुत जटिल विषय है। इसको प्राप्त करने के लिए हमें वेद, पुराण, शास्त्र का सहारा लेना पड़ेगा, जबतक हम अपनी धर्म और संस्कृति को पहचान नहीं पायेंगे, तबतक हम अध्यात्म के गुणों का विकास नहीं कर पायेंगे। इसके बिना जीवन अधूरा है, अत: हमें फिर से अध्यात्म की शिक्षा के लिए ज्ञानी पुरुषों के संपर्क में जाना पड़ेगा। आजकल झूठ और फरेब की दुनिया में लोग बसे हैं इनसे बचना पड़ेगा।

मानवीय मूल्यों में इमानदारी का होना बहुत आवश्यक है, जबतक हम अपना कार्य इमानदारी से न करें तो वह कार्य सफल नहीं हो पायेगा। आज के परिवेश में इसका सर्वथा अभाव दिखाई दे रहा है। आज चापलूसों की फौज अपनी सुख सुविधाओं के कारण इन गुणों का त्याग कर सुख के संसाधन जुटाने में व्यस्त है।

मानवीय मूल्यों में शोक संताप का एक अपना स्थान है। दया, करुणा के साथ शोक संताप भी जुड़ा हुआ है। जब हम दुखी को देखकर खुद भी दुखी हो जाते हैं, वह शोक संताप कहलाता है।

कर्त्तव्यनिष्ठा का अभिप्राय अपने कार्य के प्रति पूरी ईमानदारी और निष्ठा से समर्पित होना होता है। परंतु आज के

दौर में लोग सिर्फ धन के पीछे दौड़ रहे हैं, और निष्ठापूर्वक अपना कार्य नहीं कर पा रहे हैं। इसे अपने मानवीय मूल्यों में सम्मिलित कर लें तो हम एक योग्य नागरिक बनकर देश को उन्नति के पथ पर ले जा सकते हैं।

सत्य ही ईश्वर है। पहले सत्य के लिए लोग अपनी जान तक न्यौछावर कर देते थे, परंतु आज बात-बात पर झूठ का सहारा ले रहे हैं। एक सत्य को छिपाने के लिए हजार झूठ बोलते हुए भी नहीं झिझक रहे हैं। इन मानवीय मूल्यों का विकास करके हम स्वयं में एवं दूसरों में बदलाव ला सकते हैं। अहिंसा परमोधर्म हमारा प्राचीन सूत्र रहा है, परंतु आज बात बात पर लोग हिंसा पर आतुर हो जाते हैं, और एक दूसरे को मारने में भी संकोच नहीं करते हैं। गांधी जी का एक मात्र ध्येय सत्य और अहिंसा था इसलिए उन्हें राष्ट्रपिता कहा गया है।

हमारी संस्कृति में अतिथि देवो भव: की परम्परा रही है। हमें अपनों से बड़े माता-पिता, गुरु को सम्मान देना चाहिए जो आज की पीढ़ी नहीं कर पा रही है। पाश्चात्य संस्कृति एवं एकल परिवार की अवधारणा ने इस मानवीय गुणों को नष्ट कर दिया है। जिसका दुष्परिणाम आज अपने माँ बाप को छोड़ रहे हैं, गुरु के प्रति उनका सम्मान नहीं है। हम जबतक दूसरों का सम्मान नहीं करेंगे तो यह अपेक्षा कैसे करें कि वह हमारा सम्मान करेगा।

पाठशाला को संस्कार शाला में बदलने हेतु हमें इनमें मानवीय गुणों को अपने पाठ्यक्रम में लाना होगा तभी हम संस्कारवान जीवन निर्माण, सहयोग व सहकार की भावना, प्राणी मात्र की रक्षा, ईश्वर में आस्था, सेवा, राष्ट्रभक्ति जैसे गुणों का विकास कर सकते हैं। इसके लिए हमें स्वयं आगे आना होगा। इन मानवीय गुणों का विकास बच्चों पर कैसे हो, इस पर चिंतन करना होगा, इसके लिए स्वस्थ वातावरण, खेलकूद, प्रार्थना सभा, बाल सभा, सांस्कृतिक आयोजन करके, पर्व और त्यौहारों, महापुरुषों की जीवनी, लोक कथा को बच्चो को शिक्षा देना होगा, तभी हम पाठशाला को सांस्कृतिक, संस्कारित परिवेश में बदल सकते हैं। यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, परंतु अगर हम चाहें तो यह कठिन भी नहीं है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत इन सभी मानवीय मूल्यों का समावेश किया गया है, जरूरत है तो उन्हें पाठशालाओं में कैसे लागू करें, पाठ्यक्रम का निर्धारण करें, समयबद्ध कार्यक्रम, बच्चों के स्तर के अनुरूप कराएँ, तभी हम इस परिकल्पना को साकार कर सकते हैं।

मानवीय मूल्यों के संदर्भ में प्राचीन मंदिरों, वेद पुराण एवं महापुरुषों के द्वारा समय-समय पर जन चेतना लाया गया, जिसका सार्थक परिणाम उस दौर में देखने को मिला, परंतु जब से भारत पर विदेशी हुकुमत आयी, उन्होंने हमारी संस्कृति एवं सभ्यता को नष्ट किया गया। आज हम भूलते जा रहे हैं परंतु यही विदेशी हमारी संस्कृति और धर्म को अपना रहे हैं। इसका ताजा उदाहरण अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोप और पश्चिमी देशों में 'हरे रामा हरे कृष्णा संस्कृति का प्रादुर्भाव देखने को मिल रहा है। आज पूरे विश्व में हमारे योग साधना को अपना कर लोग निरोग हो रहे हैं, और हमारे युवा पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर अपनी मर्यादा, धर्म और संस्कृति को नष्ट कर रहे हैं।

आज के समय में इन मानवीय गुणों का विकास करना महती आवश्यकता है नहीं तो हमारे युवा रास्ते से भटक कर हिंसा, बेरोगारी, आत्महत्या, तनाव जैसे दुर्भावनाओं को अपनायेंगे और हमारा देश पुन: एक बार फिर विदेशी मानसिकता के चंगुल में फँस जाएगा। यह बहुत ही चिंतनीय एवं सोचनीय विषय है। हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस पर विचार किया है यह स्वागतेय है। अब जरूरत है इसको अमली जामा पहनाने की, तभी हम एक स्वस्थ नागरिक और उन्नत राष्ट्र की परिकल्पना को साकार कर सकते हैं।

इसलिए सही कहा गया है, आदर्श व्यक्तित्व नैतिकता पर आधारित होता है। नैतिक मूल्यों के अभाव में समाज और संस्कृति का विनाश होता है। सही और गलत के बीच में अच्छा चुनाव हमारे मानवता का परिचय होता है। नैतिक मूल्यों का पालन करने से व्यक्ति अपने बच्चों में नेतृत्वशक्ति भरता है। ❑

शिक्षा : संस्कारों की पोषक

डॉ. जसपाल सिंह वरवाल
दूरस्थ व ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय
जम्मू विश्वविद्यालय

संस्कार का अर्थ है अच्छे गुण, अच्छे व्यवहार, अच्छे कर्म एवं अच्छा रहन-सहन आदि। बच्चों को बचपन से जीवन पर्यन्त संस्कार मिलते ही रहते हैं। बच्चों में संस्कार का गुण विकसित करने के लिए हमें घर में अच्छा वातावरण बनाना चाहिए। बच्चों की प्रथम पाठशाला घर ही होता है और बच्चे के माता-पिता प्रथम गुरु होते हैं। यदि बच्चों में संस्कार डालने हैं तो बचपन से ही उनको ऐसे परिवेश में रखना होगा। बच्चे के माता-पिता, चाचा-चाची दादा-दादी एवं अन्य परिवार सदस्य संस्कार निर्माण में उपयोगी होता है। जैसा प्रत्येक व्यक्ति घर में व्यवहार करेगा, घर के सामान को तरीके से रखेगा, आगंतुक का स्वागत कैसे करेगा, सब काम तरीके से एवं समय से करेगा वैसा ही घर का बच्चा सीखेगा। बच्चे यह सब देखकर एवं सुनकर उन्हीं चीजों का अनुसरण करते हैं। इसलिए बच्चों में संस्कार की नींव घर परिवार से ही डालनी होती है।

संस्कार की शिक्षा

जब बच्चा शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हो जाता है तब विद्यारंभ संस्कार किया जाता है। सोलह संस्कारों में नौवां स्थान विद्यारंभ संस्कार का होता है। विद्यारंभ संस्कार के जरिए बालक को शिक्षा और ज्ञान के प्रति जागरुक किया जाता है। प्राचीन काल में बच्चों को विद्यारंभ संस्कार के लिए गुरुकुल भेजा जाता था। वर्तमान में भारतीय शिक्षा प्रणाली में छात्रों को संस्कार दिए जाना लगभग नगण्य होता जा रहा है। यह एक चिंता का विषय है। शिक्षा और संस्कार एक-दूसरे के पूरक हैं। 'शिक्षा' मनुष्य के जीवन का उपहार है जो व्यक्ति के जीवन की दिशा और दशा दोनों बदल देती है और संस्कार जीवन का सार है जिसके माध्यम से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है। जब मनुष्य में शिक्षा और संस्कार दोनों का विकास होगा, तभी वह परिवार, समाज और देश के विकास की ओर अग्रसर होगा। शिक्षा का तात्पर्य सिर्फ पुस्तक-ज्ञान ही नहीं, बल्कि चारित्रिक ज्ञान भी होता है जो आज की इस भागदौड़ वाली जिंदगी में हम भूल चुके हैं। हम अपने बच्चों को अच्छे विद्यालयों में दाखिला दिलाकर संतुष्ट हो जाते हैं, परन्तु यह हमारी लापरवाही है जो हमारे बच्चों को दिशाहीन कर रही है। आज के अधिकांश बच्चे संभ्रांत तो हैं, पर विवेकशील नहीं हैं। भारतीय संस्कृति में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे यहाँ महिलाओं को बराबरी का स्थान एवं बराबर का सम्मान देने की प्रथा है। तथाकथित आधुनिक समाज आधुनिकता का आवरण देकर पुरातन संस्कारों को दकियानूसी बताकर, दुत्कार रहा है और अंग्रेजी सभ्यता को अपना रहा है। हमारी

मातृभाषा, मातृभूमि के संरक्षण की उपेक्षा होने के कारण संस्कारों के अभाव में आधुनिक समाज का चारित्रिक पतन, अपराधीकरण एव धनलोलुप हो जाना आम है, जो युवाओं को कुप्रवृत्तियों की तरफ धकेल कर नशा आदि की ओर अग्रसर कर रही हैं। इससे हमारे देश का भावी युवा दिशाहीन हो रहा है।

शिक्षा व्यवस्था की चुनौतियाँ

आज हम अनेक विद्यालयों में देखते हैं कि वहाँ शिक्षा केवल नाम के लिए रह गई है। शिक्षा के द्वारा प्राचीन समय में हमें ज्ञान तथा नैतिक मूल्यों को सिखाया जाता था। परन्तु आज यह बहुत बड़ा प्रश्न हमारे सामने उठ खड़ा हुआ है कि इस शिक्षा प्रणाली के जरिए हम वही ज्ञान और नैतिक मूल्यों को प्रदान नहीं कर पा रहे हैं। क्या सही मायने में हम उन्हें सही ज्ञान और आदर्श सिखा रहे हैं? आखिरकार यह जिम्मेदारी किसकी है? माता-पिता की, शिक्षक की, विद्यालय की या पूरे समाज की, या सबसे अहम भूमिका सरकार की सतर्कता के साथ सदैव कार्यशील एवं तत्पर रहना ही हमारे अच्छे भविष्य का निर्माण कर सकती है। कड़वा सच है कि आज के इस युग में शिक्षक की भी परिभाषा बदल गयी है। इतने सारे अनैतिक कार्य कुछेक शिक्षकों के द्वारा किये जाते हैं जिनकी हम कभी परिकल्पना भी नहीं कर सकते हैं और दोषारोपण केवल आज की शिक्षा प्रणाली एवं समाज और सरकार पर ही किया जाता है। ये आंशिक रूप से सही भी है, परन्तु एक विद्यार्थी के साथ एक शिक्षक को भी अपने आदर्शों का मान रखना चाहिए! शिक्षक नाम के गर्व को बनाये रखना चाहिए। कहते हैं एक मछली पूरे तालाब को गन्दा करती है, उसी प्रकार किसी एक या दो शिक्षकों के गलत कार्यों के द्वारा कहीं न कहीं पूरे शिक्षक समाज पर इसके छींटे पड़ते हैं और इन छींटों को हमारे शिक्षक समाज को मिलकर ही दूर करना होगा। हमें अपने नाम के आगे गौरव की वो शिखा स्थापित करनी होगी जिसे पार करना या वहाँ तक पहुँचना किसी भी चरित्रहीन व्यक्ति के बस की बात न हो! भ्रष्टाचार, आतंक, असमानता, जातिवाद, सभी का आधार कहीं न कहीं शिक्षा ही बनती जा रही है! शिक्षा के बल पर दुनिया जीती जा सकती है, परन्तु आज की शिक्षा व्यवस्था और उससे जुड़े लोग यह कथन असत्य कर रहे हैं! आजकल घूस, दलाली, चोरी, एक खुला व्यापार सब शिक्षा जगत में आसानी से प्रवेश कर चुका है। और हो न हो ये कहीं न कहीं नैतिक मूल्यों की कमी और उसके हनन का ही एक ज्वलंत परिणाम हमारे सामने उभर कर आया है।

राष्ट्रप्रेम से लेकर अपनी संस्कृति का गौरव और गर्व का भाव विद्यार्थी में जागृत हो ऐसा पाठ्यक्रम निर्माण किया जाना है। नवीन शिक्षा नीति के इन प्रथम कुछ वर्षों से इस निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है कि संस्कार की शिक्षा अब संस्थानों में फिर से प्रवेश कर रही है। अन्य प्रयासों में हम देखते हैं कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के 'हमारा विद्यालय – हमारा तीर्थ' जैसे अभियान ने भी संस्थानों में संस्कार के साथ नए आदर्श स्थापति किए हैं।

शिक्षा का भारतीयकरण

वर्तमान में सभी प्रश्नों के हल के लिए शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से बदलने की आवश्यकता थी। भारत की शिक्षा व्यवस्था भारत केन्द्रित हो जिससे हम अपने भविष्य के युवाओं को संस्कार के धन से ओतप्रोत कर सकें। इसके लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का निर्माण होना भारत के नवीन और सार्थक भविष्य की पहल का सूचक है। भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा के साथ संस्कार और संस्कृति का भी समावेश किया है। राष्ट्रप्रेम से लेकर अपनी संस्कृति का गौरव और गर्व का भाव विद्यार्थी में जागृत हो ऐसा पाठ्यक्रम निर्माण किया जाना है। नवीन शिक्षा नीति के इन प्रथम कुछ वर्षों से इस निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है कि संस्कार की शिक्षा अब संस्थानों में फिर से प्रवेश कर रही है। अन्य प्रयासों में हम देखते हैं कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के 'हमारा विद्यालय – हमारा तीर्थ' जैसे अभियान ने भी संस्थानों में संस्कार के साथ नए आदर्श स्थापति किए हैं। ❑

मानवीय मूल्यों का संस्कार

डॉ. धनंजय कुमार मिश्र
विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग
सिका. मु. विश्वविद्यालय,
दुमका (झारखण्ड)

मानव मन की दो गतियाँ होती हैं - प्रवृत्ति और निवृत्ति। इन दोनों में निवृत्ति श्रेष्ठ होती है परन्तु यदि प्रवृत्ति लोकपरायणा या लोकोपकारिका हो तो वह भी श्रेयस्करी समझी जाती है। खुद को छोड़ परोन्मुखी भाव ही मानवीय चेतना होती है।

महान ऋषि-मुनि तपस्वी महात्मा जीवन के सम्यक् संचालन के लिए जिस मार्ग को स्वीकार करते हैं वही आज तक हमारे आदर्श मानवमूल्य और अक्षयनिधि हैं क्योंकि 'महाजनो येन गतः सः पन्था' अर्थात् महापुरुषों के अपनाए मार्ग ही हमारे जीवन को लक्ष्य प्राप्त कराने वाले पथ हैं।

इस संसार में मनुष्य जीवन से बढ़कर और कुछ भी नहीं। मनुष्य प्रयास से अपने अन्दर दैवी गुणों को समाहित करने में समर्थ है तथा पाशविक वृत्ति को स्वीकार कर वह समस्त ब्रह्माण्ड में खुद को पतित सिद्ध कर सकता है। मूल्य परायण सुसंस्कृत व्यक्तित्व का निर्माण मनुष्य का लक्ष्य होता है जो परिवार से विश्व तक सुख-शांति और समृद्धि का वातावरण प्रशस्त करता है। जब तक मूल्य के स्वरूप का बोध नहीं होता है, कार्य रूप में स्वीकार नहीं किया जाता, अपने अन्दर उसे गुम्फित न किया जाता तब तक सुसंस्कृत व्यक्तित्व का निर्माण असंभव है।

संस्कार शब्द का मूल अर्थ है, 'शुद्धीकरण'। 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर 'संस्कार' शब्द बनता है। पूर्वाचार्यों ने संस्कार शब्द का विभिन्न अर्थों में उपयोग किया है। महर्षि चरक का मानना है कि नए गुणों को जागृत करना संस्कार कहलाता है 'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते'। मनुष्य के दोषों का परिहार कर उसमें सद्गुणों का आधान करने की प्रक्रिया का नाम संस्कार है। मनुष्य के मन, बुद्धि तथा सद्भावनाओं को विकसित करना भी संस्कार कहलाता है। मनुष्य में दैवी गुणों का विकास जो उसके समग्र उत्थान के लिए आवश्यक हो वह भी संस्कार कहलाता है। उदाहरण स्वरूप भारतीय संस्कृति मातृ शक्ति के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाली है और 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' यह उक्ति इसका प्रमाण है। वर्तमान सदी में जहाँ विद्रूप वैभव का शिकार होकर सामान्य जन उपेक्षित महसूस कर रहा है, वैसे में पुनः श्रद्धा भाव विकसित करना संस्कार ही कहा जाएगा।

मूल्य शब्द से तात्पर्य किसी भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। मूल्य के दो पहलू होते हैं विषय-वस्तु और तीव्रता। कुछ अंश तक मूल्य आंतरिक भाव होते हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व में प्रतिबिम्बित होते हैं। मूल्य अमूर्त होते हैं, जो सीखे जाते हैं।

दृष्टिकोण के आधार पर सकारात्मक और नकारात्मक दो प्रकार के मूल्य हो सकते हैं। सकारात्मक मूल्यों के अन्तर्गत जैसे - सत्य, अहिंसा, शांति, धैर्य, परोपकार आदि का समावेश होता है तो नकारात्मक मूल्य के

अन्तर्गत हिंसा, अन्याय, कायरता, मृषा, उत्कोच आदि कहे जा सकते हैं। उद्देश्य के आधार पर साध्य और साधन दो प्रकार के मूल्य होते हैं। साध्य मूल्य के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएँ या अवस्थाएँ आती हैं जो स्वयं में शुभ होती हैं। जबकि साधन मूल्य वे हैं जो अपने आप में शुभ न होकर किसी अन्य वस्तु के साधन के रूप में शुभ होता है।

विषय क्षेत्र के आधार पर मूल्य कई प्रकार के होते हैं। यथा –

1. सामाजिक मूल्य – सामाजिक जीवनमूल्य समष्टि की समृद्धि के शक्ति केन्द्र होते हैं। सामाजिक मूल्य के अन्तर्गत अधिकार, कर्त्तव्य, न्याय आदि का समावेश किया जाता है। साथ ही परिवार, वर्ण, आश्रम, रीति-रिवाज, परम्परा, आचार-विचार आदि का भी ग्रहण इसके अन्तर्गत हो जाता है।

2. वैयक्तिक मूल्य – इस श्रेणी के अन्तर्गत विवेक, वाङ्माधुर्य, मनस्विता, विनम्रता, शील, परोपकार, दया, न्याय, ईमानदारी आदि रखे जाते हैं।

3. सांस्कृतिक मूल्य – किसी परिवार, समाज या राष्ट्र की अन्त: चेतना का विकास करने वाले अवयवों से सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण होता है। सांस्कृतिक मूल्य के अन्तर्गत पुरुषार्थ चतुष्ट्य अर्थात् धर्म, अर्थ, कामादि, उपनयनादि संस्कार, राष्ट्रप्रेम, यज्ञ, विद्या आदि का समावेश होता है।

4. आध्यात्मिक मूल्य – इस श्रेणी के मूल्यों में मन, बुद्धि, सत्, चित्, आनन्द, शांति, प्रेम, अहिंसा, दैव, कर्म, वैराग्य, तप, यम, नियमादि का समावेश किया जाता है।

5. नैतिक मूल्य – इसके अन्तर्गत उचितानुचित एवं नयपरक जीवनमूल्यों का ग्रहण किया जाता है।

6. दार्शनिक मूल्य – भारतीय षड् दर्शन सांख्य, योग, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, वेदान्त ही नहीं चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन के निर्धारित मूल्यों को इसके अनतर्गत लिया जाता है। वैदिक तथा अवैदिक मूल्य भी इसी श्रेणी में आते हैं। प्रमाण, तत्त्व, आत्मा, सृष्टि, ब्रह्म, माया, जीव आदि दार्शनिक विवेच्य भी ग्रहण किये जाते हैं।

7. भौतिक मूल्य – जीवन में भौतिक समृद्धि का महत्त्व सर्वविदित है। जीवन यात्रा की निर्बाध गति के लिए यह मूल्य आवश्यक माना जाता है। जैसे- भोजन, मकान, वस्त्र, कृषि, कला, संगीत, सामुद्रिक सम्पदा, व्यापार, वाणिज्य, सेवाकार्य, आयात-निर्यात आदि इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

8. प्रेमपरक मूल्य – प्रेम मानव अस्तित्व का आधार होता है। प्रत्येक मानव के अन्दर यह भावना होती है। स्थायी भाव रति इसका मूल है। वात्सल्य, दाम्पत्य और अनुरागात्मक सम्बन्ध इसके अन्तर्गत समाविष्ट होते हैं। यह मूलत: मनोवैज्ञानिक मूल्य है।

9. सौंदर्यात्मक मूल्य – सुन्दरता, मनोहरता, उदारता आदि की भावना तथा प्रकृति, कला एवं मानवीय जीवन की सुन्दरता से सम्बन्धित उदात्त भावनाओं को सौंदर्यात्मक मूल्य कहते हैं।

10. मनोवैज्ञानिक मूल्य – प्रेम, दया, सहानुभूति, परोपकार, वासना, कृतज्ञता, सौख्य आदि जैसे मूल्य इसकी परिधि में आते हैं।

11. दिव्य एवं शाश्वत मूल्य – दिव्य प्रभाव एवं आचरण, प्रातिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सत्य, मानवीय वृत्ति, आदर, स्नेह, विनम्रता, श्रद्धा, विश्वास, शिष्टाचार, कृतज्ञता इत्यादि का समावेश इसके अन्तर्गत किया जाता है।

कार्य क्षेत्र के आधार पर मूल्यों को प्राय: तीन रूपों में विभक्त किया जा सकता है?

1. राजनीतिक एवं जनकल्याणपरक मूल्य – प्रशासनिक मूल्य इसके अन्तर्गत आते हैं। साथ ही ईमानदारी, सेवा भाव, राजधर्म, राज्य व्यवस्था, विदेशनीति, साम, दाम, दण्ड, भेद आदि।

2. न्यायिक मूल्य – सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता आदि मूल्यों को इसके अन्तर्गत रखते हैं।

3. व्यावसायिक मूल्य – जवाबदेही, जिम्मेदारी, सत्यनिष्ठा, कर्तव्य निष्ठा आदि भावनाएँ इसमें समाहित हैं।

मानवीय मूल्यों के संस्कार मानव जीवन में आवश्यक हैं। 'किं कर्तव्यं किं वा न कर्त्तव्यम्' का सम्यक् बोध आज की युवापीढ़ी के लिए आवश्यक है। मानवीय मूल्यों का संस्कार परिवार, समाज, विद्यालय, महाविद्यालय ही नहीं जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मानवीय मूल्यों के संस्कार विकसित करने के लिए अनेक मार्ग दिखाए गए हैं। पाठ्यक्रमों में महापुरुषों की जीवनी, भगवद्गीता का अनुशीलन, राम के चरित्र का विश्लेषण, वर्णाश्रम-धर्म, पुरुषार्थ चतुष्ट्य आदि आवश्यक रूप से रखकर युवा पीढ़ी को संस्कारित किया जा सकता है। भारतीय जीवन पद्धति में सनातन धर्म के सन्देश सर्वथा ग्राह्य हैं। विकसित भारत की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए सर्जनात्मक बुद्धि से विध्वंसात्मक प्रवृति का नाश आवश्यक है। विवेक की जागृति के बाद ही 'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' के महामंत्र की सार्थकता सिद्ध हो सकती है। ❑

निवृत्ति श्रेष्ठ होती है परन्तु यदि प्रवृत्ति लोकपरायणा या लोकोपकारिका हो तो वह भी श्रेयस्करी समझी जाती है। खुद को छोड़ परोन्मुखी भाव ही मानवीय चेतना होती है । मनुष्य प्रयास से अपने अन्दर दैवी गुणों को समाहित करने में समर्थ है तथा पाश्विक वृत्ति को स्वीकार कर वह समस्त ब्रह्माण्ड में खुद को पतित सिद्ध कर सकता है। मनुष्य के दोषों का परिहार कर उसमें सद्गुणों का आधान करने की प्रक्रिया का नाम संस्कार है। मूल्य शब्द से तात्पर्य किसी भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

Scientific Temperament and Thinking in An Indian Way

Dr. Debadin Bose

Associate Professor
Cooch Behar Panchanan Barma University,
Coochbehar, West Bengal

Very often we hear the term 'Scientific Temperament and Thinking'. The term is usually pronounced as a synonym of advancement to a person and denotes a person with updated knowledge as well as wisdom. However, we do not want to think much beyond of that. Neither we want to define the term nor do we want to formulate some dicta for that. In a word, we use it in a 'sensu lato'.

Scientific Temperament by default is a kind of philosophy which a human with basic sense of reasoning and rationality can achieve by practice. Science, it may be biological or physical or it may deal with galaxies and stars or plants or microbs, in common, endeowours to formulate a simple answer or way to describe a natural phenomenon. Scientists observe a natural phenomenon carefully and put some quarries about that and formulate a simple solution after doing some experimentations or calculations or both, which we call the laws of science. The observations may be the length of pea plant or fall of an apple from a tree. Sometimes there is no direct observation at all. Nobody can see a black hole or an electron in a particular place, but there is indirect observation or machine reading. There are many scientific discoveries which do not comprise any physical observations. Taking the example of 'Higgs boson' or 'God Particle', which was conceptualized in 1960s but took almost fifty years to be proved experimentally. Thus the whole process of scientific temperament and thinking relies upon experimentation, observations of experimental data, rational thinking as well as reasoning.

Now the question is what kind of thinking or reasoning is it which makes it so special. The answer may be like that the scientific temperament or thinking is a kind of thinking or reasoning which remain unaffected by the thinker's own personality, social status, economy and personal beliefs. Let me explain the above statement. A good example can be drawn from the work and life of Charles Robert Darwin (1809 – 1882) and Gregor Johann Mendel (1822 –1884). Darwin, a Victorian gentleman, deeply religious, loyal to Church, put forth a revolutionary theory of evolution which was totally against his personal religious belief. On the other hand, Mendel was an Augustinian friar and abbot of St. Thomas' Abbey in Brno, Margraviate of Moravia, a priest as well as a teacher. This deeply religious man is now considered as 'father of genetics' for his 'laws of inheritance'. As an abbot and priest, Mendel had to perform his religious duties. During this time he also manifested highest level of scientific temperament and thinking.

Here a simple question arises. Is the scientific temperament only limited to explaining the natural facts of the material world or anything beyond that? Here cultural ethics and moral values come to play.

Every discovery is a creation. It may not come in the form of a beautiful sculpture, painting, poetry or literary work, but comes in either a mathematical formula or a graph or some colour changes in a test tube. The 9th symphony of Beethoven or Gitanjali of Tagore or theory of relativity of Einstein resonate in a way. A scientist ultimately touches the same destination which a writer, a singer, a painter or a poet can touch with their own creation. When a scientist sees birth of a star from cosmic dusts of death of a star in the form of super nova or traces of

life in hydrothermal vents, they realize the same ultimate reality of a philosopher which is beyond the time and space. May I call it as "Anandam" as described in Upanishada? I may. It is a lifelong endless journey towards a beautiful destination. It is a journey towards the 'Absolute".

"One who knows Brahman, reaches the highest. Satya (reality, truth) is Brahman, Jnana (knowledge) is Brahman, Ananta (infinite) is Brahman. — Taittiriya Upanishad, 2.1.1" is the ultimate goal of scientific temperament and thinking. Do they somehow come in close with thinking of Upanishada? May I ask an eternal question "Who am I" to a scientist? Obviously he would the book of human evolution and start his story from Australopithecus, Homo habilis and so on with a vast account of fossil records. If the same question was asked to an Indian philosopher, he would open the Upanishada. Could our "Rishis" think scientifically? India is considered as a land of philosophy and religion. It is generally a common conclusion that a religious mind cannot think scientifically. Interestingly, in Munduka Upanishada we found an eternal question कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति (Mundaka Upanishad; Verse 1.1.3)which truth opens the truth of everything? The answer was mesmerizing. The great philosopher of the Upanishada answered to his student द्वैविद्ये वेदितव्ये इति ह् स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च (Mundaka Upanishad; Verse 1.1.4), the knowledge is of two types, one is for daily life called "Apara Vidya" another, which is superior, is for wisdom, called "Para Vidya". The "Para Vidya" enlightens the philosopher and is beyond the time and space. The same Upanishada also define "Para Vidya" अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते (Mundaka Upanishad; Verse 1.1.5), which helps us to know the supreme truth. A person, who practiced "Para Vidya" become a sapient. How can people achieve it? The way was described in Katha Upanishada त्वग्यया बुद्धवा सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः (Katha Upanishada; Verse 1.3.12) It would be by concentrated and finely tuned mind. Do you not think that this concentrated and finely tuned mind denotes a mind of a scientist? It is true.

Here comes the beauty of Indian Philosophy. It gives us the enormous opportunity and unconditional freedom to a particular person to explain the events that occur in material world in an open, rational and meaningful manner. Romain Rolland pointed out that the spirit of Vedanta follows the true scientific temper in all aspects. He said, "The true Vedantic spirit does not start out with a system of preconceived ideas…. each man has been entirely free to search wherever he pleased for the spiritual explanation of the spectacle of the universe." ["Life of Swami Vivekananda and the Universal Gospel" page 147]. He may be a believer or atheist, may belong to the higher strata of the society or may not be, enjoyed the same opportunity and freedom. Here, I believe, resides the ultimate of scientific temperament and thinking. Thousands of years back, a way was defined magnificently not in English or Latin, but in Sanskrit. A person can think beyond the horizon in an open, rational and meaningful manner if he had a concentrated mind which is finely tuned with values and ethics. He has the power that can change the course the civilization. He may be called a "Rishi" or a "Scientist" or "Sthitapragya" whatever else which is rightly said in Mandukya Karika, verse 2.35 as वीतरागभयक्रो धैर्मुनिभिर्वेदपारगैः। निर्विकल्पो दृययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः।।
(Mandukya Karika, verse 2.35)

(The perfect knowledge can be realized only by that person who are free from all blemishes and who are enlightened.
https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/mandukya-upanishad-karika-bhashya/d/doc143666.html). . ❑

Every discovery is a creation. It may not come in the form of a beautiful sculpture, painting, poetry or literary work, but comes in either a mathematical formula or a graph or some colour changes in a test tube. The 9th symphony of Beethoven or Gitanjali of Tagore or theory of relativity of Einstein resonate in a way. A scientist ultimately touches the same destination which a writer, a singer, a painter or a poet can touch with their own creation.

Character Building : A Journey through Indian Philosophical Wisdom

Amit Halder

Assistant Professor,
Department of Botany
Nabadwip Vidyasagar
College, West Bengal

In the tapestry of nation-building, the role of students and their character stands as a foundational cornerstone, weaving together the threads of ethical leadership, social responsibility, and cultural integrity. The character of students nurtured within educational institutions forms the bedrock upon which the edifice of a nation's future is erected. Rooted in values, ethics, and a sense of civic duty, the character of students plays a pivotal role in sculpting the contours of a progressive and harmonious society. Within the corridors of learning, students are not just recipients of knowledge but architects of societal evolution. Their character traits - integrity, resilience, empathy, and determination - serve as catalysts for shaping the ethos and trajectory of a nation.

Concept of Samskaras, Ethics and Virtue

Central to Indian philosophy is the concept of 'Samskaras' - the imprints left on the mind by one's actions, experiences, and thoughts. Indian thinkers, notably the Vedantic and Yogic schools, emphasize the transformative power of consciously shaping these 'Samskaras' to reform one's character through practices like meditation, self-reflection, and righteous action. Students as individuals can refine their thoughts and actions, thereby altering their character's trajectory. Ethics and virtue have profound lessons in these domains that can be gleaned from ancient texts such as the Vedas, Upanishads, Bhagavad Gita, and various other scriptures. The wisdom encapsulated in these texts provides a timeless guide for individuals seeking moral and virtuous living. By integrating these lessons into their lives, individuals can aspire to lead virtuous, purposeful, and morally upright existences.

Character building as a wholesome process

Swami Vivekananda long ago stressed the integration of academic knowledge with ethical and moral values. He believed that education should not only focus on intellectual growth but also on nurturing qualities like

compassion, integrity, and resilience. Schools, according to his philosophy, should be laboratories where students learn not just facts but also how to live a life guided by principles. Here's a brief compilation of character qualities inspired by Vivekananda's teachings.

Courage : Students need courage to face academic challenges, social pressures, and personal fears. It enables them to speak up for what's right, try new things, and persist through difficulties.

Compassion : Encouraging compassion helps students develop empathy and understanding for diverse perspectives, fostering a kind and inclusive environment.

Self-discipline : Essential for academic success, self-discipline enables students to manage time effectively, stay focused on their studies, and maintain a balance between academics and other activities.

Truthfulness : Honesty in academic endeavors fosters integrity and ethical conduct. It helps students build trust with peers and teachers.

Integrity : Upholding moral principles ensures that students act ethically in their academic pursuits and personal interactions, contributing to a culture of honesty and trust.

Resilience : Students face setbacks, failures, and challenges. Resilience helps them bounce back, learn from failures, and persist in their efforts.

Humility : Humble students are open to learning from others, accept feedback positively, and foster harmonious relationships without arrogance.

Service-mindedness : Engaging in community service instills a sense of responsibility towards society, nurturing empathy and a desire to contribute positively.

Gratitude : Encouraging gratitude helps students appreciate their education, teachers, and opportunities, fostering a positive attitude toward learning.

Optimism : A positive outlook helps students navigate challenges with resilience, seeing setbacks as opportunities for growth.

Wisdom : Students seek knowledge not just for grades but to understand the world. Applying this wisdom to real-life situations promotes better decision-making and critical thinking.

Determination : Students need determination to set and achieve goals, persevere through challenges, and stay committed to their aspirations.

Forgiveness : Encouraging forgiveness helps students let go of conflicts, promoting a peaceful and supportive environment.

Patience : Essential for learning, patience helps students endure difficulties, master complex concepts, and develop a deeper understanding of subjects.

Self-reliance : Developing self-reliance empowers students to take ownership of their learning, fostering independence and accountability.

Spirituality : Spirituality promotes inner peace, ethical behavior, and a sense of purpose beyond material success, guiding students to lead meaningful lives.

Focus : Teaching focus aids students in concentrating on their studies, improving learning outcomes, and achieving academic excellence.

Generosity : Encouraging generosity fosters a sense of sharing, cooperation, and kindness among students.

Selflessness : Students who prioritize the welfare of others contribute positively to their communities, fostering a culture of empathy and altruism.

Open-mindedness : Being open to new ideas and perspectives promotes critical thinking, creativity, and a broader worldview.

Leadership : Developing leadership skills nurtures students to guide and inspire their peers positively, fostering teamwork and innovation.

Empowerment : Fostering self-belief empowers students to take on challenges, explore new opportunities, and achieve their potential.

Adaptability : Students equipped with adaptability thrive in diverse environments, easily adjusting to changes and evolving circumstances.

Harmony : Striving for balance and unity promotes peaceful coexistence, fostering a supportive and inclusive school environment.

By cultivating these qualities in students, educators and parents play a crucial role in shaping individuals who not only excel academically but also exhibit strong character, empathy, and resilience, preparing them to navigate life's challenges successfully.

Role of Character Development of the Students in Nation Building

The role of character in students is foundational to the process of nation-building, contributing significantly to various aspects that shape the fabric of a nation. Students with strong character traits, such as integrity, honesty, and empathy, often evolve into ethical leaders. These future leaders play pivotal roles in governance, business, education, and various sectors, steering the nation toward progress with ethical decision-making and a sense of responsibility toward the welfare of the nation. They actively participate in community service, social initiatives, and policymaking. Therefore, fostering good character among students is integral to nation-building, ensuring a strong and prosperous future for the nation.

Indian philosophy of education places a strong emphasis on character building, integrating values, self-discovery, service, practical learning, mindfulness, and the role of teachers. Schools that imbibe these principles strive not only to impart knowledge but also to nurture individuals of strong character who contribute positively to society. In conclusion, the synergy between character reformation, the influence of students on society, the concept of 'Samskaras,' and the ethical teachings from ancient texts creates a narrative of holistic personal and societal development.

Conclusion :

Indian philosophy of education places a strong emphasis on character building, integrating values, self-discovery, service, practical learning, mindfulness, and the role of teachers. Schools that imbibe these principles strive not only to impart knowledge but also to nurture individuals of strong character who contribute positively to society. In conclusion, the synergy between character reformation, the influence of students on society, the concept of 'Samskaras,' and the ethical teachings from ancient texts creates a narrative of holistic personal and societal development. It beckons individuals to embark on a journey of self-discovery, mindfulness, and ethical living, ultimately contributing to the greater tapestry of a harmonious and enlightened society. The echoes of this wisdom resonate through time, inviting all to introspect, learn, and evolve towards a brighter and more virtuous future. ❑

The significance and role of Sanskriti in Bharat

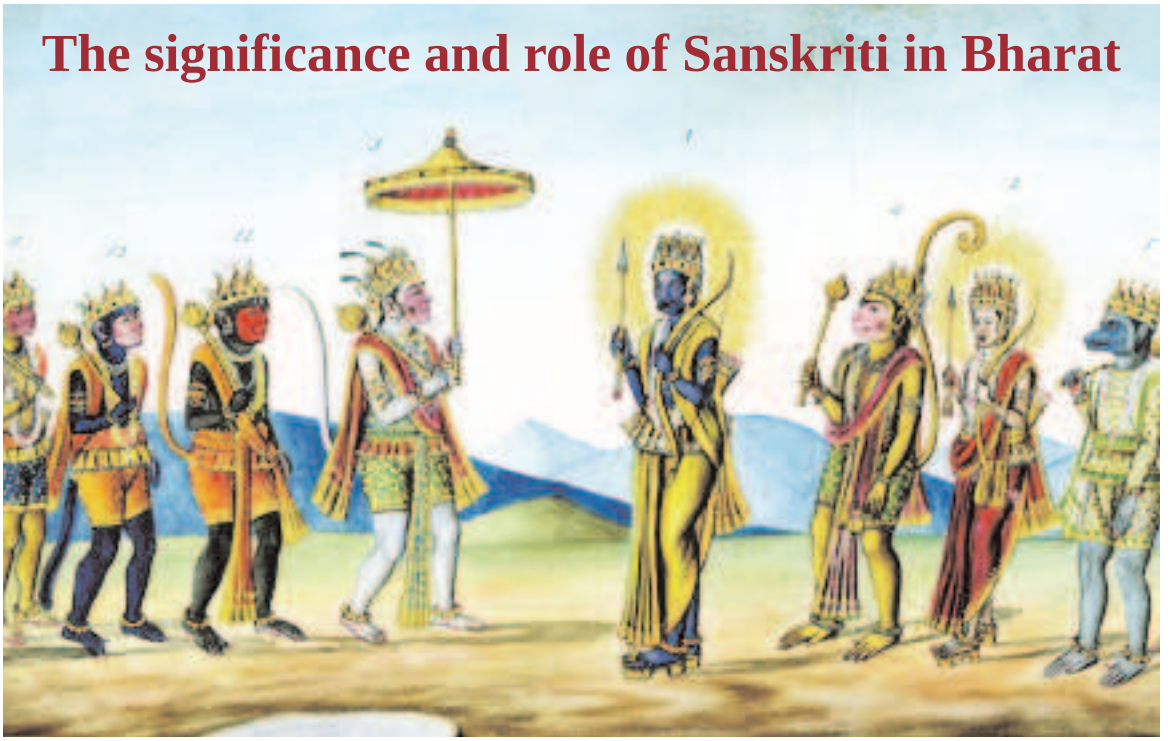

Prof. TS Girishkumar

MSU, Baroda (Rtd)

In every Nation, society ought to have an identity in whatever relevant manner that may be exhibited. For many, language becomes their identity like Germany, France, England and the like. Some treat their geographical locus as their identity, some others make a religion or sub sects within their identity. Of course, there are also some unfortunate nations who do suffer from identity crisis (es) as well! Our neighbor Pakistan suffers from such a crisis right from inception, which may be known to some, but not to most of the people. I should keep some space to discuss the identity crisis among the Pakistanis, just for the reason that we in Bharat must know about it.

The beginning of Pakistan is from the famous 'two nations' theory call by the Muslim autochthones – self-styled indeed - with such postulates that Hindus and Muslims can't co-exist and hence Muslims shall want a separate nation from Bharat. They thought that Islam is one all over the world and Islam shall make them one, but in no significant time, they came face to face with an identity crisis of Islam per say, as to who is an authentic Muslim. Perhaps everyone in Pakistan thinks that he is the real Muslim and his sect (whatever) is the appropriate Islam.

Recently, this 'right from the beginning' dilemma surfaced once more, when Bharatiya ministers Smriti ji and Murali ji visited Madina in Saudi on an official mission to Saudi. There was huge uproar and cry from many corners, especially from Pakistan that it is wrong to let non-Muslims to let in their sacred places, but Saudi clearly told them that they are Arabs, and Islam is originally their religion, so let no convert comment or dictate the original ones, the Arabs – and very correctly so. Precisely this – this is the identity crisis of Pakistani Muslims. They have Arab names, they have their prayers in Arabic, they follow an Arab originated Abrahamic religion, and they want to be the purest (which they can't be given their Hindu ancestry), but they are not and can never be Arab. Indeed, they really do not know what to do and where do they stand – and such is their crisis of identity.

The identity of Bharat as a Nation state is none of these.

Language is not basis of Bharatiya identity, Geography is not the basis of Bharatiya ientity, and religion is not the basis of Bharatiya identity. The identity of Bharat is entirely different.

Sanskriti as identity of Bharat

Bharat is the only Nation state in the entire history that has Sanskriti as its identity. Bharatiya Sanskriti is an evolutionary phenomenon, and it shall be inappropriate to translate Sanskriti as culture for the simple reason that Sanskriti is well beyond the concept of culture as one unpacks the concept. Culture can be understood as 'refined human existence' whereas Sanskriti is 'refined human co-existence with an inbuilt perpetual longing towards the transcendental' where the co-existence phenomenon is an offshoot from the vedopanishadic epistemology of co-existence.

Bharatiya Sanskriti is an offshoot from the Vedopanishadic knowledge tradition, which has the epistemology of co-existence. Dharma in Bharat (not religion as the term is often wrongly translated) becomes the knowledge expression outwardly on the postulate of Bharatiya Sanskriti, which is further based on the veopansihadic knowledge tradition. Thus, Bharatiya Sanskriti is is the only civilization in the world which is based on a knowledge tradition.

Educating Sanskriti

Identity of any sort, ought to be imparted from generations to generations when it is an authentic one. Here it becomes natural for one to impart positive and meaningful aspects of human existence to every new generation.

Basic education, where the fundamentals of knowing are discussed should be one such ideal stage where the process of Bharatiya Sanskriti 'handing over' should take place. One has to aim making 'Pathsalas into Sanskrita Salas' to make things effectively meaningful. To this end, it shall only be appropriate that 'Pathsalas bane sanskritasalas'. Every teacher should consciously contemplate on these and manifest his best in such directions. It is almost certain that the days to come shall belong to Bharat, and Bharat shall indeed keep functioning as 'Viswaguru' in all its connotations and denotations.

Normally, the first such instrument of educating Sanskriti becomes parents through family. Here, let us constantly remember that in Bharat, the first unit of Sanskara comes from Kutumb, and this makes it categorical and imperative that Bharatiya families remain strongly integrated. The advanced and serious aspect of Sanskriti shall get imparted in Bharat through the multifarious operations of Bharatiya Dharmas, like the Sanatana Dharma, the Jain Dharma, the Buddha Dharma and the Sikh Dharma as given in chronological order. Because of families, society, pathsalas and Dharmas, Bharatiya Sanskriti kept getting imparted from time to time and generation to generation effectively in spite of unimaginable and unprecedented coercions and destructions from alien oppressors of many natures.

Pathsalas to educate Bharatiya Sanskriti

Unlike other cultures, Bharatiya Sanskriti has many interconnected and inter-related ingredients built in into it. This makes it rather complicated and somewhat confusing at times, that, calls for authentic imparting effectively. The archetype Bharatiya social structure and institutions therein had been functioning most efficiently and effectively, but, at the same time, it must also be possible for us to get the same thing done through our institutions of education.

Bharatiya education is well structured and is with very efficient acharyas even today, in spite of many invasive adversaries. It shall only be ideal, should we start the long and tedious phenomena of imparting Bharatiya Sanskriti to the young ones and the old ones who are often late, given inadvertent circumstances through all means available.

Basic education, where the fundamentals of knowledge are discussed should be one such ideal stage where the process of Bharatiya Sanskriti 'handing over' should take place. One has to aim making 'Pathsalas into Sanskrita Salas' to make things effectively meaningful. To this end, it shall only be appropriate that 'Pathsalas bane sanskritasalas'. Every teacher should consciously contemplate on these and manifest his best in such directions. It is almost certain that the days to come shall belong to Bharat, and Bharat shall indeed keep functioning as 'Viswaguru' in all its connotations and denotations. ❑

National Education Policy - 2020 : A Policy of Complete Realisation and Liberation of the Self

Dr. Anil Kumar Biswas

Associate Professor
Department of Political Science, The University of Burdwan (West Bengal)

Education is a dynamic process that starts from birth. Education is the mirror of society and base of the socio-economic development. Education transforms human beings from ignorance to enlightenment, from underdevelopment to faster economic and social development. Education is a process of character building, strengthening the mind, and expansion of intellect (Biswas, 2017). According to Swami Vivekananda, education is the manifestation of perfection already in man. According to Tagore, Knowledge is liberation. The spiritually liberated man is the aim of Indian education. Education alone can create a climate and establish a state "where the mind is free, and the head is held high, where knowledge is free, where the world has not been broken up into fragments of narrow domestic walls, where words came from the depths of truth." According to the 'Mahatmas', education is a process that enlightens the human being. But inthe era of liberalization education has been defined as per its market value. Now education has become more degree-oriented than knowledge-oriented. After the implementation of liberalization, privatization, and globalization education is now like a commodity like others (Biswas,2022).India as a land of rich philosophy and thoughts as well as a welfare state has taken various initiatives forthe quality education of all for complete realization and liberation of the self. In that context, India has taken initiatives for universalization of quality education as well as makingcompetent as per the demand of the market at a same time need of the crisis prone world. In Indian education school has taken prime role to enlightenment. In Indian tradition school is a temple of knowledge and heart of the school (temple) is its teachers (gurus) and students (Vidyarties). The relationship between teachers and students in Indian tradition is as parents and children.

India has a long history in its own education system. Since ancient period education system of India has maintained continuity in its style. We are proud of the past glory of our education system.The present education policy of the

country is prepared on the basis of rich heritage of ancient India based on knowledge (gyaan), wisdom (pragyaa) and truth (satya). The aim of the ancient Indian education was not just acquire knowledge as preparation for life, it was roots of the complete realisation and liberation of the self. But in the medieval period education system was not too good. In that period education was an elitist fashion. British government introduced modern education; but it was completely market oriented not based on Indian ethos and it was introduced only for their own interest. After independence, government of India has taken various initiatives for quality education for all on the basis of our own tradition and ethos discarding colonial line. Kothari Commission was set up in 1964-66, National Policy on Education for the first time was introduced in 1968, National Policy on Education in 1986, Right to Education Act 2009 in the line of national policy on education 1986, National Education Policy 2020 based on the recommendation of Kasturirangan Committee 2019.

The New Education Policy targets to abolish this trajectory and revive back the lost Indian cultural glory, by inculcating in young Indian minds the true essence of Indian culture, customs, and traditions as well as amalgamating them with modern scientific technology and knowhow. In reality, National Education Policy 2020 is able to develop a tradition of education for complete realization and liberation of the self by making bridge between the tradition and modernity.

National Education Policy- 2020

After a long period of 34 years, the government approved a new National Education Policy on July 29th, 2020in line with the recommendation of the Kasturirangan Committee. The National Education Policy, 2020 is the first education policy of the 21st century that aims to address the many growing developmental imperatives of the country. In particular, 2030, the agenda for sustainable development, was adopted by India along with the United Nations Members States in 2015. The policy includes the Sustainable Development Goal to "ensure inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for all" by 2030. This policy proposes the revision and revamping of all aspects of the education structure, including the regulations and governance, to create a new system that is aligned with the aspirational goals of 21st-century education along with India's traditions and values (Ministry of Human Resource Development, 2020). The policy emphasizes the creativity of the individual. The policy is based on the principles that education develops the cognitive capacities of the learners in every stage along with social, ethical, emotional capacities including cultural awareness and empathy, teamwork, and leadership, service and sacrifice, courtesy and sensitivity, oral and written communication, integrity and work ethic. For the fulfillment of the vision government framed some major features of the policy are as follows:

- Ensuring universal access at all levels of schooling from pre-primary school to grade 12;
- Ensuring quality early childhood care and education

for all children between 3-6 years;

- New Curricular and Pedagogical Structure (5+3+3+4);
- No hard separations between arts and sciences, between curricular and extra-curricular activities, between vocational and academic streams;
- providing food and nutrition (breakfast and midday meals);
- Establishing National Mission on Foundational Literacy and Numeracy;
- Emphasis on promoting multilingualism and Indian languages; The medium of instruction until at least grade 5, but preferably till grade 8 and beyond, will be the home language/mother-tongue/local language/regional language.
- Assessment reforms - Board examinations up to two occasions during any given school year, one main examination and one for improvement, if desired;
- Equitable and inclusive education - Special emphasis is given to Socially and Economically Disadvantaged Groups (SDGs);
- A separate gender inclusion fund and special education zones for disadvantaged regions and groups;
- Robust and transparent processes for recruitment of teachers and merit-based performance;
- Exposure to vocational education in school and higher education system; (Ministry of Human Resource Development, 2020)

Why National Education Policy-2020 is New?

The New Education Policy is different from its predecessors. The new essence of this policy is that it aims to disseminate and popularize the rich culture, ethos, and traditions of India, revamp it, and bring back the glory of Indian knowledge. It intends to once again imbibe and prioritize the ancient Indian values and enrich the education system by assimilating them into the Indian education system. In other words, it wants the young generation to go back to it's roots but at the same time not let go of the technological advancements and know-how of the Western world. India boasts of being home to numerous indigenous tribes. According to the Census of 2011, 8.6% of the population is tribal. The policy aims to tap the tribal values, creative endeavors, customs, and culture into the curriculum. It plans to refocus on traditional knowledge.

India for decades has been following the Western trajectory of education and the inception of this has been since 1835. In 1835 the famous Macaulay Minute had advocated that English was the supreme of all languages and Indian learning was inferior. The New Education Policy targets to abolish this trajectory and revive back the lost Indian cultural glory, by inculcating in young Indian minds the true essence of Indian culture, customs, and traditions as well as amalgamating them with modern scientific technology and knowhow. In reality, National Education Policy 2020 is able to develop a tradition of education for complete realization and liberation of the self by making bridge between the tradition and modernity.. ❑

Swami Vivekananda and His Inspiration in the Field of Education

Amit Kundu

Associate Professor, Cooch Behar Panchanan Barma University, Cooch Behar, West Bengal

Swami Vivekananda's ideas on education are extremely important today because they have lost much of their connection to the values of human existence in modern schooling. He attempted to convey to the Indian populace the idea that cultural strength had to be the cornerstone of political and social power. He has a genuine understanding of the Indian educational concept within its cultural setting.

Even though he is no longer with us, his memory will live on forever. Future generations will continue to be inspired by his missions and sermons. He thought that the education should help the common men to equip themselves for the struggle of life. According to him Real education enables one to stand on his legs. Education is nothing but "life-building, man-making, character-making assimilation of ideas" according to his words. Integrated person is the outcome of education as per his thinking is concerned.

Teachers' attitude

A good teacher, in Swami Vivekananda's opinion, is someone who possesses a renunciation-oriented attitude, influences children through setting an example, loves his students and shows empathy for their struggles, adapts their instruction to their needs, abilities, and interests, and fosters their spiritual growth.

Aspect of Morality

The understanding of Swamiji was that the greatness of a country was determined by the seriousness of its people as well as by the democratically established establishments and behavior of the country. But citizens can only become great via their ethical and divine growth, which is something that learning should promote.

Quantitative Development of the Citizen

The child's ability to support national progress and advancement as a brave and physically fit citizen of the future is the second goal of education. Vivekananda placed a strong emphasis on a child's mental growth and wished that education would help them become self-sufficient financially rather than fitting dependent on others.

Student Attitude

A pupil ought to be motivated and inclined to be taught. He ought to be a celibacy watcher. His senses need to be within his control. He ought to adhere to the principles his instructor sets forth.

Meditation and Swami Vivekananda

Vivekananda wishes to emphasize meditation and focus as

much as possible during the education method. Five components are always present in yoga practice, just as they are in general education: the student, the goal, the subject, the technique and off course the teacher. He was persuaded that all information resides in the surface of individual mind and that can be experienced by meditation and exercises of focus.

Women Education

Sita and Sabitri, as models of ideal womanhood, were highly esteemed by Swami Vivekananda. For him, Sita represented hardship and patience, as well as a kind, and pure nature. Women who are as pure and gentle as Sita are what the perfect role model of womanhood desires. At the very core of our race, Sita is the icon, to borrow Vivekananda's words. Every Hindu man and woman is sprung from Sita; she is in our blood. We witness this every day: every attempt to modernize our women, if it seeks to remove them from the principles of Sita, is met with instant failure. The only way for an Indian woman to advance is to follow in Sita's footsteps. Vivekananda stated, "In the west, the woman is wife," in reference to ideal of the west region. There, in the role of the wife, is centered the ideal of womanhood. In India, parenthood is seen by the average male as the pinnacle of womanhood. The mother reigns in an Indian home, while the wife does so in a western one. For a country to succeed, its people must engage in its political, social, cultural, and economic life. Education has always involved the application of theoretical knowledge and information to real-world situations. Men can contribute to the arts, sciences, literature, architecture, and other professions through education, which enhances culture and civilization. Regretfully, morality has become obsolete in today's environment, undermining the importance of human worth and dignity. When Vivekananda saw the current state of culture, he realized that human sensuality needed to give way to human spirituality. As the Vedanta has taught since the beginning of time, this is true wisdom.

Environmental Education

It is believed that environmental education is essential to the educational process. It is assumed to be centered on real-world issues and may have an interdisciplinary nature. It ought to prioritize the development of moral principles, promote the welfare of the general public, and prioritize the endurance of the individual race. Therefore, its force should be directed by current and future subjects of concern, putting the learners' initiative and participation in action aside. By using resources wisely, students can control the surroundings where they live thanks to environmental education.

Swamiji is actually a medicine into the life of young to battle against all types of societal troubles. 'Synthesis' is the catchphrase of Vivekananda. Contemplation and devotion to duty were unified in his character. In actuality, He was the supreme character of all time. He aspired to reorient politics, sociology, economics, and education with the purpose of eradication of the faults of society. Swami Vivekananda emphasised that education is a potent tool for bringing about this change.

Conclusion

Swamiji is actually a medicine into the life of young to battle against all types of societal troubles. 'Synthesis' is the catchphrase of Vivekananda. Contemplation and devotion to duty were unified in his character.

In actuality, He was the supreme character of all time. He aspired to reorient politics, sociology, economics, and education with the purpose of eradication of the faults of society. Swami Vivekananda emphasised that education is a potent tool for bringing about this change. As an educationalist, he is of the opinion that moral principles should be upheld by effective educational systems. The purpose of education is to prepare people for life. It should foster a sense of patriotism and global awareness, foster character development, and help people become self-sufficient. The morals and norms of culture are eroding in the modern era. It is imperative that we take action to stop this eradication. A robust life can only be achieved through the process of a well-designed educational system. This is the understanding of Swamiji and his words are timeless. ❑

"Building Futures: The Essential Role and Services of Child-Friendly Teaching-Learning in Indian Elementary Education"

Dr. Mayur Pujari

Assistant Professor, Department of Education, Central University of Karnataka, Kalaburagi

Child Friendly Teaching-Learning has emerged under the framework of Child-Friendly Schools and Systems (CFSS), which focus on the elements that need to be included in schools and teaching & learning to support the holistic development of children and, ensure equity with quality. It further refers to educational approaches, environments, and materials that are designed to meet the needs and developmental stages of children, making the learning process joyful, engaging, and effective. Therefore, the concept emphasises on three guiding principles - Child Centred, Democratic Participation and Inclusiveness with consideration children unique characteristics, interest's, and learning styles to optimise their full potential as individuals, as member of their communities and as citizen of the world.

Key words - Child-Friendly, Teaching-Learning, Universal Education, Elementary Education, Language, Mathematic & Science Education, Mother Tongue, Sports & Value Education.

Major Efforts towards Achieving Universal Education in India -

India has a rich tradition of imparting knowledge. The 'Gurukula' was a type of education system in ancient India with Shishya (students) living with the guru and acquiring knowledge under his guidance. Nalanda was the oldest university system of education in the world. Students from across the world were attracted to Indian knowledge systems. Many branches of the knowledge system had their origin in India. Education was considered a higher virtue in ancient India. However, the renaissance and scientific thinking, as happened in Europe, didn't occur in India at that time due to various reasons. Since the country's independence in 1947, the Indian government sponsored a variety of programs to address the problems of illiteracy in both rural and urban India and provide quality education.

Under Article 45 in the Directive Principles of State Policy, it was mentioned that the government should provide free and compulsory education for all the children up to the age of 14 years within 10 years from the commencement of the Constitution. As this could not be achieveds, following that, many amendments to the constitution were made to improve primary school education in India. Article 21A was introduced by the 86th Constitutional Amendment Act of 2002, making elementary education a fundamental right rather than a directive principle. To implement Article 21A, the government legislated the RTE Act-2009. Under this act, SSA – SarvaShikshaAbhiyan – got a further impetus. SSA aims to provide Universalization of Elementary Education (UEE) in a time-bound manner. SSA has been operational since 2001-2002. Its roots go back to 1993-1994 when the District Primary Education Programme (DPEP) was launched.

Further, the Indian school education system is one of the largest in the world, with nearly 11.96 lakh schools and 18.86 Crore students enrolled in primary & upper-primary schools from varied socio-economic backgrounds in

India (Source: UDISE+ 2021-222). Therefore, the New Education Policy-2020 creates ample opportunity to provide Child-Friendly Holistic Education along with achieving 100% enrollment& retention in elementary schooling.

Teaching Learning Process as Child- Friendly School and System Framework (CFSS):The process of teaching and learning is a multifaceted and dynamic cycle wherein a teacher or educator imparts knowledge, skills, or attitudes to a learner. It includes a range of activities, strategies, and interactions intended to ease the acquisition and comprehension of information. Within the framework of the teaching-learning process is characterized by several layers, and a deeper understanding can be achieved by examining its sub-concepts, such as Age.

Appropriate Content - Learning materials and activities should be suitable for the child's age and developmental stage. This ensures that the content is relevant, understandable, and aligns with the child's cognitive abilities. Engaging and Interactive-Child-friendly learning emphasizes hands-on and interactive activities. Children learn best when they can actively participate in the learning process, whether through games, experiments, discussions, or other interactive methods.

Safe and Supportive Environment - A child-friendly learning environment is physically and emotionally safe. It encourages a positive and supportive atmosphere where children feel comfortable expressing themselves, taking risks, and making mistakes without fear of judgment.Inclusive and Diverse-Learning materials and activities should be inclusive, considering the diverse backgrounds, abilities, and learning styles of children. It promotes an environment where every child feels valued and represented.

Play-Based Learning- Play is a natural way for children to learn and explore the world around them. Child-friendly learning often incorporates play-based activities that help develop social, emotional, and cognitive skills.

Flexibility and Adaptability- Child-friendly learning recognizes that children progress at different rates and have different learning paces. Therefore, it allows for flexibility and adaptability in teaching methods to accommodate individual differences.

Encourages Curiosity and Creativity - Child-friendly learning environments foster a sense of curiosity and creativity. They encourage children to ask questions, explore new ideas, and express their creativity through various means.

Positive Reinforcement- Positive reinforcement and feedback play a crucial role in child-friendly learning. Encouraging and praising children for their efforts and achievements helps build their confidence and motivation to learn.

By incorporating these principles, teachers and educators can create a child-friendly learning environment that not only facilitates academic development but also nurtures the holistic growth of children. In the above context, a few important concepts and subjects like language, mathematics, science, sports, value education and other co-curricular activities were briefly discussed in the lens of child-friendly teaching learning practices.

Language Education in Elementary Schools - It typically involves teaching students the fundamentals of language, literacy, and communication and it is innate in human beings.Therefore, the aims of language and literacy education should be closely linked to the aims of education as a whole. Further, a more central aim should be to enable students to use language literacy skills and practices to participate meaningfully and in an empowered manner in society. In a highly socially stratified society like India, this would mean building access to culturally powerful ways of using languages and literacy for many of our students. The normative vision should be to create empowered citizens who can use language and literacy to live lives of dignity, who can use these capacities to shape

The overall progress and opportunities in various areas have contributed to the advancement of elementary education in India. The National Education Policy-2020 underscores the commitment to providing high-quality education with a focus on competency and skill-based learning, starting from the primary level and extending throughout the higher education system. This collective effort aims to shape a future where education is not only accessible but also empowers individuals with the skills and knowledge needed for a successful and fulfilling life.

their own lives and the lives of the societies and communities meaningfully (Luke 2000). Hence, aims of language and literacy education need to be conceptualized in a holistic manner and it should be taught in child-friendly teaching learning process.

Here are some key aspects of language education at the elementary level

Basic Literacy Skills - Elementary language education focuses on developing fundamental literacy skills, including reading, writing, and comprehension. Students learn phonics, vocabulary, and grammar to build a strong foundation in language. The aim should be that children see reading and writing as meaningful and connected activities that have relevance for their lives inside and outside of school.

Oral Communication - Elementary students develop oral communication skills through activities such as class discussions, presentations, and storytelling. This helps them express themselves verbally and engage in effective communication.

Reading Comprehension: Emphasis is placed on improving reading comprehension skills, enabling students to understand and interpret various types of texts. Reading activities may include storybooks, informational texts, and other age-appropriate materials along with text books. All children (even 3 year olds) come to school or Anganwadi with the ability to comprehend the mother tongue at an interpersonal conversational level. However, in formal settings, school Provides exposure to children at different levels of complexity and demands in terms of lauguage use in oral & written form. Therefore, children should be exposed on graded texts by using various teaching-learning strategies to develop the ability to comprehend. Meaning-making or comprehension is a central aim of language and literacy education, and must be nurtured.

Writing Skills - Students are taught basic writing skills, including sentence structure, grammar, and punctuation. They learn to express their thoughts coherently through activities such as creative writing, journaling, and simple essays.Therefore, children should be gradually familiarized with different scripts in an age-appropriate manner. A key aim should be to make children fluent at accurately decoding and expressing grammatically correct sentences to communicate thoughts & ideas.

Multilingual capabilities

India is a multilingual society. If the vision is to sustain and enrich the multilingual character of our society, then a key aim of language and literacy education should be to provide sufficient opportunities for developing the multilingual capabilities of children. This helps in the growth of each individual as well as nurtures to respect each other's culture and maintain harmony & peace in the nation.

Language Arts Integration

Language education is often integrated with other subjects under the umbrella of language arts. This integration allows students to apply language skills across various disciplines, fostering a holistic approach to learning.In summary, language education in elementary schools aims to lay the groundwork for effective communication, literacy, and a lifelong love of learning. The curriculum often integrates reading, writing, speaking, and listening skills, providing a comprehensive approach to language development.

Mathematics Teaching in Elementary Schools - Mathematics is an integral part of everyday life, and its fundamental processes are indispensable. The practical aims of teaching mathematics at the elementary school level include fostering clear ideas about number concepts, imparting understanding of essential operations in daily life, ensuring comprehension of number applications in various measures, developing proficiency in fundamental operations, providing a foundation for vocational mathematical skills, cultivating an aptitude to meet the demands of daily life, future math work, and related fields, understanding concepts like ratio and scale drawing, and applying mathematical skills to solve diverse real-life problems. Therefore, the following key aspects covered in mathematics curriculum are Basic Arithmetic : Elementary students learn fundamental arithmetic operations such as addition, subtraction, multiplication, and division. Number Knowledge: Emphasis is placed on developing number sense, helping students understand the relationships between numbers and their magnitudes.Geometry and Shapes: Introduction to basic geometric concepts, including shapes, spatial relationships, and measurement.

Problem Solving

Students learn to solve simple mathematical problems, fostering critical thinking and analytical skills.

Math Language

Familiarization with mathematical

language and vocabulary to enhance communication.

Real-World Applications

Connecting mathematical concepts to real-world situations, demonstrating the practical relevance of math.In summary, mathematics teaching in elementary schools aims to equip students with foundational math skills, foster a positive attitude toward the subject, and prepare them for more complex mathematical concepts in later grades.

Science Teaching in Elementary Schools

In essence, science teaching in elementary schools aims to spark curiosity, develop critical thinking skills, and provide a foundation for understanding the natural world through hands-on experiences and inquiry-based methods. Therefore, the following key aspects are covered in science curriculum like.

Hands-on Experiments

Engaging students in age-appropriate, hands-on experiments and activities to promote exploration and understanding of scientific concepts.

Observation and Exploration

Encouraging students to observe the natural world, ask questions, and explore scientific phenomena.

Inquiry-Based Learning

Fostering a curiosity-driven approach where students actively investigate and seek answers to questions through experimentation and research.

Scientific Method

Introducing the scientific method, including the steps of observation, hypothesis formulation, experimentation, data collection, and drawing conclusions.

Use of Technology

Incorporating age-appropriate technology, such as educational apps or online resources, to enhance science learning.

Group Activities

Encouraging collaborative learning through group projects, experiments, and discussions.

Critical Thinking

Developing critical thinking skills by encouraging students to analyze and interpret data, make predictions, and draw conclusions.

The Elementary School General Assembly holds significant implication in the school, it serves as a vital platform to unite the entire student community. Its importance is multifaceted, encompassing various key aspects. Firstly, it plays a crucial role in community building by creating a shared space where students come together, fostering a sense of belonging and camaraderie. Additionally, the assembly acts as a communication hub, facilitating important announcements and promoting effective dialogue between the school administration and students. Cultural exchange is another integral component, with assemblies often featuring presentations that highlight cultural and educational diversity, fostering understanding among students. Moreover, the assembly serves as a venue for celebrating academic accomplishments, sports triumphs, and other milestones, thereby uplifting student morale. Lastly, it provides a valuable opportunity to reinforce school values, ethics, and positive behaviour expectations, contributing to the overall character development of the student community. The Children's School Cabinet in elementary schools holds significance for student involvement and empowerment. Its key aspects include providing a platform for student representation, allowing students to voice opinions and concerns. The Cabinet facilitates leadership development by involving students in decision-making processes related to school activities. It promotes ownership of the learning environment, instilling pride and a sense of responsibility. Participation in the Cabinet cultivates problem-solving skills and introduces students to civic engagement, fostering an understanding of the democratic process and the importance of active participation in their school community. In summary, both the general assembly and the Children's Cabinet contribute to creating a positive and inclusive school culture, emphasizing communication, leadership skills, and a sense of community and responsibility in the elementary school environment.

Value Education in elementary schools serves as a cornerstone for character development by instilling positive values like honesty, responsibility, and empathy in students. Additionally, it promotes social skills and ethical behaviour, cultivating a positive and respectful school environment. Acting as a moral compass, value education guides students in making ethical decisions and understanding the consequences of their actions. The curriculum includes lessons on conflict resolution and communication skills, contributing to the development of a harmonious and inclusive school community. Furthermore, value education instils a sense of civic

responsibility, encouraging students to become active and responsible members of their community and society.

Nutrition Programs in elementary education play a vital role in promoting the health and well-being of students. By ensuring access to balanced and nutritious meals, these programs positively impact cognitive development, enhancing concentration, memory, and academic performance. Well-nourished students exhibit improved energy levels, actively participating in learning activities and physical education. Nutrition also influences behaviour and attention; a well-balanced diet contributes to enhanced behaviour and increased attention span in the classroom. Furthermore, nutrition programs help instil healthy eating habits early in life, fostering a lifelong commitment to well-being and healthy choices. In summary, while value education in elementary schools contributes to character development and building a positive school culture, nutrition programs are crucial for students' overall health, well-being, and academic success. Both aspects are integral to creating a holistic and supportive learning environment.

Mother Tongue Education in primary schools in India entails instructing children in their native or regional languages. This approach values and acknowledges India's linguistic diversity, offering education in various regional languages. Learning in one's mother tongue is conducive to cognitive development, enabling children to grasp concepts more easily and establish a robust foundation for further learning. It also plays a pivotal role in preserving cultural identity, connecting students to their heritage, traditions, and local customs. Additionally, effective communication is facilitated as children often express themselves more proficiently in their mother tongue. Proficiency in the mother tongue further serves as a sturdy foundation for acquiring additional languages, encompassing both India's official languages and international languages. Research indicates that students who receive education in their mother tongue tend to achieve better academic outcomes, particularly in the early years of schooling. Recognizing the significance of mother tongue education, article 350A facilitates for instruction of mother tongue at primary stage and have implemented various policies to promote it in India. In summary, mother tongue education in primary schools in India strategically leverages the educational potential of linguistic diversity, fostering cultural identity, cognitive development, and effective communication during the early stages of schooling.

Experiential Learning in Indian elementary schools is highly significant for several reasons. It fosters active engagement by involving students directly in the learning process, deepening their understanding through hands-on experiences. The approach connects classroom learning to real-world scenarios, highlighting the practical relevance of academic content and sharpening problem-solving skills. Experiential learning encourages critical thinking and decision-making, prompting students to analyze, evaluate, and draw conclusions from their experiences. Moreover, it enhances information retention as students are more likely to remember concepts learned through active participation. By tapping into intrinsic motivation, it makes learning enjoyable, fostering a positive attitude towards education. Beyond academic knowledge, experiential learning nurtures skills such as communication, collaboration, creativity, and problem-solving. It accommodates diverse learning styles, allowing students to excel in ways that align with their individual strengths and preferences. Importantly, by promoting adaptability and resilience, experiential learning prepares students for future challenges, equipping them with a broader skill set and a mindset for

lifelong learning.

Importance of Sports in Elementary Education - Sports hold paramount importance in elementary education for various reasons. Firstly, they contribute significantly to physical health and well-being, instilling healthy habits from an early age. Moreover, engagement in sports activities aids in the development and refinement of motor skills, coordination, and agility. Team sports play a crucial role in fostering essential social skills like teamwork, communication, and collaboration. Additionally, participating in sports imparts discipline and time management skills, nurturing a sense of responsibility and task prioritization in students. Physical activity in sports serves as an effective stress reduction mechanism, enhancing mood and positively impacting mental well-being, which, in turn, benefits academic performance. Lastly, sports are instrumental in teaching important life skills such as resilience, perseverance, leadership, and the ability to cope with both success and failure. In essence, sports in elementary education contribute holistically to the physical, social, and psychological development of students.

Importance of Music in Elementary Education - The significance of music in elementary education is multifaceted. Music education positively impacts cognitive development by enhancing memory, attention, and reasoning skills. It also plays a crucial role in improving language skills, including listening, vocabulary, and verbal memory. Moreover, music provides a creative outlet for expression, allowing students to explore emotions and thoughts through

diverse musical forms. Additionally, learning to play an instrument fosters discipline and focus, contributing to overall character development. Music's power to evoke and regulate emotions is harnessed through music education, enabling students to express emotions constructively. In summary, music, along with sports, is integral to elementary education, promoting physical health, cognitive growth, social skills, and emotional well-being, creating a well-rounded educational experience tailored to diverse student needs and talents.

In conclusion, the imperative for elementary education in India extends to reaching the disadvantaged, marginalized, and socio-economically backward segments of society. Ensuring access to and completion of free, compulsory, and high-quality elementary education is crucial, particularly for girls, children facing challenging circumstances, and those in rural areas. The management of educational structures must prioritize holistic learning, addressing the diverse needs of individuals through equitable access to suitable learning environments and child-friendly teaching-learning processes.

Fortunately, there is a growing demand and recognition of education across all sections of society. Guardians universally understand the importance of education not only for societal status but also for the efficiently leading daily life activities. Positive strides have been made, evidenced by improved school infrastructure, universal gross enrollment, decreased dropout rates, particularly among girls, and increased teacher recruitment.

The overall progress and opportunities in various areas have contributed to the advancement of elementary education in India. The National Education Policy-2020 underscores the commitment to providing high-quality education with a focus on competency and skill-based learning, starting from the primary level and extending throughout the higher education system. This collective effort aims to shape a future where education is not only accessible but also empowers individuals with the skills and knowledge needed for a successful and fulfilling life. ❑